रोज केरकेट्टा की कहानियों में आदिवासी स्त्री संघर्ष

पाठ्यक्रम: HIN-675 शोध प्रबंध

श्रेयांक: 16

स्नातकोत्तर कला (हिंदी)

की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध

शोधार्थी

रानी सेमसन तोपनो

अनुक्रमांक: 22P0140025

PR Number: 201902981

मार्गदर्शक

दीपक प्रभाकर वरक

शणै गोंयबाब भाषा और साहित्य संकाय

हिंदी अध्ययन शाखा

गोवा विश्वविद्यालय

अप्रैल 2024

GOA UNIVERSITY
SHENOI GOEMBAB SCHOOL OF LANGUAGES & LITERATURE
TALEIGAON PLATEAU

परीक्षक: दीपक प्रभाकर वरक **Seal of the School**

DECLARATION BY STUDENT

I hereby declare that the data presented in this Dissertation report entitled, **"रोज केरकेट्टा की कहानियों में आदिवासी स्त्री संघर्ष"** is based on the results of investigations carried out by me in the Discipline of Hindi at Shenoi Goembab School of Languages and Literature, Goa University under the Supervision of **Mr. Deepak Prabhakar Varak** and the same has not been submitted elsewhere for the award of a degree or diploma by me. Further, I understand that Goa University or its authorities will be not be responsible for the correctness of observations/experimental or other findings given the dissertation. I hereby authorize the University authorities to upload this dissertation on the dissertation repository or anywhere else as the UGC regulations demand and make it available to any one as needed.

Topno.

Rani Samson Topno

22P0140025

Date: 16th April 2024

Place: Goa University

COMPLETION CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation report **"रोज केरकेट्टा की कहानियों में आदिवासी स्त्री संघर्ष"** is a bonafide work carried out by Ms.Rani Samson Topno under my supervision in partial fulfilment of the requirements for the award of the degree of Master of Arts in the Discipline of Hindi at the Shenoi Goembab School of Languages and Literature, Goa University.

Deepak Prabhakar Varak

Date: 16th April 2024

Prof. Anuradha Wagle

Dean, SGSLL, Goa University

School Stamp

Date: 16 April 2024

Place: Goa University

DECLARATION BY STUDENT

I hereby declare that the data presented in this Internship report entitled, **"रोज केरकेट्टा की कहानियों में आदिवासी स्त्री संघर्ष"** is based on the results of investigations carried out by me in the Master of Arts in Hindi at the Shenoi Goembab Languages and literature, Goa University, under the mentorship of Mr. Deepak Prabhakar Varak and the same has not been submitted elsewhere for the award of a degree or diploma by me. Further, I understand that Goa University or its authorities will not be responsible for the correctness of observations/experimental or other findings given the internship report/work.

I hereby authorize the University authorities to upload this dissertation on the dissertation repository or anywhere else as the UGC regulations demand and make it available to anyone as needed.

Topno

Rani Samson Topno

22P0140025

Date: 16th April 2024

Place: Goa University

COMPLETION CERTIFICATE

This is to certify that the internship report **"रोज केरकेट्टा की कहानियों में** आदिवासी **स्त्री संघर्ष "** is a bonafide work carried out by Ms. Rani Samson Topno under my mentorship in partial fulfilment of the requirements for the award of the degree of Masters in the Discipline Master of Arts in Hindi at the Shenoi Goembab School of Languages and Literature, Goa University.

Deepak Prabhakar Varak

Date: 16th April 2024

Prof. Anuradha Wagle

Dean, SGSLL, Goa University

School Stamp

Date:16th April 2024

Place: Goa University

गोंय विद्यापीठ
ताळगांव पठार,
गोंय - ४०३ २०६
फोन +९१- ८६६९६०९०४८

(Accredited by NAAC)

SWAYAMPURNA GOA
Goa University
Taleigao Plateau, Goa - 403 206
Tel: +91-8669609048
Email: registrar@unigoa.ac.in
Website: www.unigoa.ac.in

Ref. No. GU/LIB/ATTENDANCE CERT./2024/218

Date: 30/04/2024

TO WHOM SO EVER IT MAY CONCERN

This is to certify that Miss Rani Samson Topno, a student of Goa University, M.A. (Hindi), visited the Goa University Library for her reference work on the following dates and completed 55 Hours &5 Minutes of research internship as a part of her M.A. dissertation.

The detailed dates and times she visited are attached herewith.

This certificate has been issued at the written request of Assistant Professor Mr. Deepak Prabhakar Varak.

30/4/24

University Librarian
(Dr. Sandesh B. Dessai)

Dr. Sandesh B. Dessai
UNIVERSITY LIBRARIAN
Goa University
Taleigao - Goa.

GOA UNIVERSITY
LIBRARY
GOA

अनुक्रम

अध्याय	विवरण	पृष्ठ संख्या
	कृतज्ञता ज्ञापन	xiii, xiv
	अनुक्रम	vi, vii, viii
	भूमिका	ix, x, xi, xii
1	आदीवासी अवधारणा एवं स्वरूप 1.1आदिवासी शब्द की व्युत्पत्ति 1.2आदिवासी अर्थ एवं परिभाषाएं 1.3आदिवासी चिंतन भारतीय तथा पाश्चात्य 1.4आदिवासी कहानियों की प्रवृत्तियां	01-21
2	रोज केरकेट्टा की कहानियों में स्त्री संघर्ष 2.1पितृसत्तात्मक समाज का विरोध करने वाली स्त्री 2.2सवर्ण जाति द्वारा आदिवासी स्त्री की अवहेलना 2.3शिक्षा के लिए संघर्ष करने वाली आदिवासी स्त्री 2.4स्त्री सशक्तिकरण का चित्रण	22-37
3	रोज केरकेट्टा की कहानियों में चित्रित समस्याएं 3.1 स्त्री शोषण की समस्या 3.2 विस्थापन तथा पलायन की समस्या	38-60

	3.3 जातिगत समस्या 3.4 औद्योगीकरण की समस्या	
4	भाषा एवं शैली 4.1 भाषा 4.1.1 आंचलिक शब्द 4.1.2 बिंब 4.1.3 त्योहार 4.1.4 खाद्य पदार्थ 4.1.5 अंग्रेजी शब्द 4.2 विभिन्न शैलियों का विवेचन 4.2.1 किस्सागोई शैली 4.2.2 वर्णनात्मक शैली 4.2.3 संवादात्मक शैली 4.2.4 पत्रात्मक शैली 4.3 मुहावरा 4.4 कहावत 4.5 गीत 4.6 विवाह	61-73
	उपसंहार	74-77

भूमिका

आज वैश्वीकरण, उत्तर आधुनिकता एवं वर्चस्वादी की प्रक्रिया के बीच 'आदिवासी विमर्श' चर्चा का विषय बना हुआ है। आदिवासी भारतीय प्रायव्दीप के मूलनिवासी है। आदिवासी दो शब्दों से बना है, आदि और वासी। आदि का अर्थ है, प्रारंभ और वासी का अर्थ है, निवास करनेवाला अर्थात् 'प्रारंभ से 'निवासकरनेवाला'। मुख्यधारा के लोगों द्वारा आदिवासियों को दोयम दर्जा दिया जाता है। लेकिन आज के समय में आदिवासी अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत है और मुख्यधारा में विशिष्ट पहचान बनाने के लिए प्रयत्नशील है। आदिवासी जो प्रकृति पूजक हैं, वह अपने जीविकोपार्जन के लिए प्रकृति पर निर्भर रहते हैं। आजादी प्राप्त करने के बाद भारत ने विकास का मॉडल अपनाकर आदिवासियों के विस्थापन और शोषण का कारण बना। नब्बे के बाद विदेशी बहुराष्ट्रीय निगमों के आने से सरकार द्वारा विकास के नाम पर भूमि अधग्रहण के पंचवर्षीय योजनाएं बनाई गई। जिसके कारण लाखों आदिवासी लोग लगातार विस्थापित हो रहे है। उदहारण के लिए भाखड़ा नांगड परियोजना के 36 हजार विस्थापित परिवारों में से आधे परिवार भी फिर से नहीं बसाये जा सकें हैं। इसी का दूसरा उदाहरण है छत्तीसगढ़ में चल रहा 'हसदेव अरण्य आंदोलन' को देखा जा सकता है। विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ झारखण्ड, छतीसगढ़, उडीसा, मध्यप्रदेश और आँध्र प्रदेश आदि राज्यों के आदिवासी बहुल क्षेत्रों में जल विद्युत परियोजनाओं, विभिन्न

प्रकार के खनन कार्यों और कारखानों की स्थपना के लिए भूमि का अधिग्रहण कर रही है। उनकी कोई निष्ठा वहाँ की आदिम जातियों के प्रति नहीं है। इन परियोजनाओं के विरूद्ध समय-समय पर आंदोलन होते आये हैं। सरकार द्वारा आदिवासियों के लिए अनेक कानून बनाए गये जैसे छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम (सी एन टी एक्ट) की धारा 21, धारा 49 (1) तथा संथाल परगाना काश्तकारी अधिनियम (एसपीटी एक्ट) की धारा 13। इन अधिनियमों के होते हुए भी आदिवासियों की जमीन लेने की घटनाएं सामने आती रहती है।

यह सारे नियम 19वीं सदी में अंग्रेजी राज्य के खिलाफ हुए आदिवासियों के प्रचंड संघर्षों का इतिहास रहा है। यह अधिनियम आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन की सुरक्षा के लिए सिधु-कान्हू के नेतृत्व में हुए संथाल हुल(1855-56) और बिरसा मुंडा के नेतृत्व में हुए उलगुलान (1895-1900) की फलस्वरूप बने थे। आदिवासियों के भलाई के नाम पर सरकार द्वारा इन अधिनियमों में संशोधन किया जा रहा है। वर्तमान में भी आदिवासियों का संघर्ष कम होते हुए दिखाई नहीं देती।

रोज केरकेट्टा की कहानियों में आदिवासी स्त्रियों को केंद्र में रखकर उनकी स्थिति, संघर्षों तथा समस्याओं को व्यक्त किया है। औद्योगीकरण के वजह से आदिवासी समाज में अपसंस्कृति का बढ़ता प्रभाव दिखाई देता है तथा आदिवासी समाज में फैली विसंगतियों और पूंजीपतियों द्वारा शोषण का चित्रण भी हुआ है।

स्वयं रोज केरकेट्टा आदिवासी समुदाय से हैं। उनके कहानियों में आदिवासी समाज, उनकी संस्कृति, परंपरा, जीवन दर्शन तथा अपनी अस्मिता को बचाने की

जद्दोजहद तथा मुख्यधारा में अपनी पहचान बनाने के लिए आगे बढ़ रहे हैं। स्वयं लेखिका जिन्होंने खुद आदिवासी समाज को देखा और जिया है और उन्हीं अनुभवों को उनकी कहानियों में देख सकते हैं। समाज में आदिवासियों को बर्बर, जंगली,आदिम आदि विशेषणों से संबोधित किया जाता है। इन सभी पूर्वाग्रहों को मिटाने के लिए वर्तमान में आदिवासी लेखक तथा गैर आदिवासी लेखक द्वारा साहित्य लिखा जा रहा है।

'रोज केरकेट्टा की कहानियों में आदिवासी स्त्री संघर्ष' अध्ययन लघु शोध प्रबंध को चार अध्यायों में विभाजित किया है।

पहला अध्याय: आदिवासी अवधारणा एवं स्वरूप

इस अध्याय में आदिवासी शब्द की व्युत्पत्ति तथा आदिवासी शब्द की अर्थ और परिभाषा के संदर्भ में अध्ययन प्रस्तुत की गई है। इसी के साथ आदिवासी चिंतन भारतीय तथा पाश्चात्य और आदिवासी कहानियों की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है।

दूसरा अध्याय: 'रोज केरकेट्टा की कहानियों में स्त्री संघर्ष' रोज केरकेट्टा की कहानियों में स्त्री संघर्ष का वर्णनात्मक अध्ययन किया है। जैसे कि पितृसत्तात्मक सोच का विरोध करने वाली स्त्री, सवर्ण जाति द्वारा आदिवासी स्त्री की अवहेलना, शिक्षा के लिए संघर्ष करने वाली आदिवासी स्त्री, तथा स्त्री सशक्तिकरण का वर्णन प्रस्तुत की गई है।

तीसरा अध्याय: रोज केरकेट्टा की कहानियों में चित्रित समस्याएं

इस अध्याय में कहानियों में चित्रित विभिन्न समस्याओं पर जैसे स्त्री शोषण की समस्या, विस्थापन तथा पलायन की समस्या, जातिगत समस्या, औद्योगीकरण की समस्या, लैंगिक भेदभाव की समस्याओं का उल्लेख किया गया है।

चौथा अध्याय: भाषा एवं शैली

इसमें उनकी दो कहानी संग्रह के संबंध में उनकी भाषा एवं शैली का विवेचन है। जिसमें झारखंड में बोली जाने वाली आम बोलचाल की भाषा तथा अंग्रेजी और हिंदी का सम्मिश्रण भी दिखाई देता है। कहानियों में प्रयुक्त विभिन्न शैलियां जैसे कि किस्सागोई शैली, वर्णनात्मक शैली, संवादात्मक शैली, पत्रात्मक शैलियों का प्रयोग कर विश्लेषण किया गया है। इस अध्याय में मुहावरों और कहावतों को भी रेखांकित की गई है। इसी के साथ कहानियों में गीतों का भी प्रयोग मिलता है जिससे आदिवासियों की लोकसंस्कृती के संबंध में ज्ञात होता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आदिवासी समाज की अपनी जीवन शैली, संस्कृति, परंपराएं, मान्यताएं हैं। आदिवासी समाज मुख्यधारा समाज से भिन्न दिखाई देता है। उनकी एक अलग भौगोलिक परिवेश है। आदिवासी सदैव संघर्ष करते आ रहे हैं। यह संघर्ष रोज केरकेट्टा की कहानियों में मार्मिक रूप से चित्रित हुआ है।

कृतज्ञता ज्ञापन

प्रस्तुत शोध कार्य पूर्ण करने में शोध प्रबंध के मार्गदर्शक सहायक अध्यापक दीपक प्रभाकर वरक जी के मार्गदर्शन, प्रेरणा और प्रोत्साहन के कारण मैं अपने इस शोध प्रबंध को पूर्ण कर पायी हूँ। आपके सरल व्यक्तित्व के कारण मैं अपनी जिज्ञासाओं से परिचित हुई और यह शोध प्रबंध प्रस्तुत पूरा करने में सफल हो पाई हूँ। अपने व्यस्थता समय के बावजूद आपने मुझे मार्गदर्शन दिया उसके लिए मैं हृदयपूर्वक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

मैं वरिष्ठ आदिवासी लेखिका, आलोचक वंदना टेटे के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना चाहूँगी जिन्होंने अपना कीमती समय निकालकर मेरे साक्षात्कार के लिए राजी हुई और जिसके कारण मुझे आदिवासियों के संबंध में कई ऐसी चीज़ों का पता चला जिससे मैं रूबरू नहीं थी। उसी के साथ मेरी अध्यापिका श्वेता गोवेकर तथा ममता वेर्लेकर जी के प्रति भी आभार प्रकट करना चाहूँगी, जिन्होंने मुझे इस विषय पर मार्गदर्शन दिया, प्रोत्साहित किया और सहायता प्रदान की।

उन सभी प्रियजनों की भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस शोध प्रबंध को पूर्ण करने में मेरी सहायता की। उन सभी लेखकों, विद्वानों की भी आभारी हूँ जिनकी पुस्तकों से मेरे शोध प्रबंध के लिए उद्धरण लिया गया है।

शोध संबंधी सामग्री उपलब्ध कराने के लिए गोवा विश्वविद्यालय ग्रंथालय और ग्रंथपाल डॉ. संदेश बी. देसाई को तथा कृष्णदास शमा केंद्रीय ग्रंथालय गोवा तथा

राज्य पुस्तकालय रांची की भी विशेष आभारी हूँ। जिन्होंने मुझे शोध प्रबंध के लिए शोध सामग्री उपलब्ध कराई।

मैं अपने माता-पिता तथा समस्त परिवार की भी आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे शोध कार्य को पूर्ण करने में सहायता प्रदान की है।

दिनांक: 16 अप्रैल 2024 रानी सेमसन तोपनो

आदिवासी अवधारणा एवं स्वरूप

भारतीय समाज में आदिवासी समुदायों के संबंध में काफी भ्रम निर्मित की गई है। समाज में आदिवासी समुदायों या समूहों को कहा जाता है। जो लगभग समान जीवन जीते हैं। अपने दु:ख-दर्दों के साथ रह रहे हैं। आदिवासी देश के मूल निवासी माने जाने वाले आदिम समुदायों का सामूहिक नाम है। समाज में यह पूर्वाग्रह है कि वे जंगलों में रहने वाले असभ्य, बर्बर और जंगली है। मुख्यधारा समाज में यह धारणा विद्यमान है कि आदिवासी तथाकथित मुख्यधारा समाज के साथ संपर्क नहीं बनना चाहते हैं। इन मुद्दों के संबंध में जानकारी हासिल करने के लिए जरूरी है कि हम आदिवासियों की संस्कृति, परंपराएं जीवन शैलियों के संबंध में विस्तार पूर्वक अध्ययन करें। जिससे उनके प्रति जो धारणाएं हैं समाज में उसे हटाया जा सके। इससे पहले यह जानना जरूरी है कि आदिवासी शब्द की व्युत्पत्ति तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं को जानना आवश्यक है।

1.1 आदिवासी शब्द की व्युत्पत्ति

समाज में प्रत्येक मानव किसी न किसी मानव वंश से उत्पन्न हुआ है। प्रत्येक वंश की अपनी-अपनी विशिष्ट संरचना होती है। जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक रचना एक समूह में दूसरी समूह से भिन्न होती है। इसी प्रकार आदिवासियों की संरचना भी विशेष प्रकार की प्रक्रिया है।

'आदि' यानी पहले आरंभ तो 'आदिम' का अरबी अर्थ मनुष्य का आदि प्रजाति, मनु के समांतर। आदिवासी यानी किसी प्रदेश या राज्य के मूल निवासी।"[1]

बी.एस.गुहा और **जे.एच. हटन** के अनुसार "आदिवासियों की उत्पत्ति नेग्रिटो, प्रोटो ऑस्ट्रेलाइट या मंगोलियन वंश से मानी है।"[2]

आदिवासी जनजातियों की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए रामचंद्र मदत कर कहते हैं-"भारतीय आदिवासी द्रविड़ और मंगोलिया वंश है।"[3]

डॉ भीमराव पिंगले ने आदिवासियों की उत्पत्ति के संदर्भ में लिखते हैं- “भारत के आदिम लोगों के वंश का अभ्यास करते समय ऐसा दिखाई देता है कि नेग्रिटो तथा आस्ट्राईट वंश की विशेषताओं से उनकी विशेषताएं मिलती-जुलती दिखाई देती है। मंगोलायड या दूसरी शाखा तिबेट, मंगोलाइड ऐसी उनकी दो शाखाएं दिखती है। मोटे ओठ, छोटी सर, चपटी नाक, ऊपर निकले हुए गाल फन, चपटा चेहरा तथा पीला रंग ही इस वंश के प्रमुख शारीरिक लक्षण दिखाई देते हैं।”[4]

आदिवासी अंग्रेजी शब्द Aborigenes (ॲबोरिजिनिझ) का मराठी एवं हिंदी पर्यायवाची शब्द है। इस शब्द के साथ 'primitive’ याने आदिम या ‘अप्रगत’ ‘savage’ याने पिछड़े हुए तथा ‘indigenious tribal’ जनजाति, देशज, वनवासी आदि शब्दों का प्रयोग आदिवासी शब्द के ही पर्यायवाची रूप है। इस संदर्भ में मराठी विश्वकोश में लिखा है कि-“अबोरिजिनिझा शब्द के अलावा ‘प्रिमिटिव्ह’ यानी आदिम या अप्रगत लोग ‘सेव्हेज' यानी पिछड़े हुए। संक्षेप में ‘प्रिमिटिव्ह’ या ‘सेव्हेज' शब्दों में से आदिवासियों का पिछड़ापन एवं भोलापन ही सामने आता है, इसलिए आदिवासी शब्द को नि:संदिग्ध रूप में सही अर्थ प्राप्त नहीं हुआ है।”[5] इससे ज्ञात होता है कि आदिवासी इस संज्ञा का प्रयोग मूलनिवासी लोगों के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

आदिवासी शब्द की उत्पत्ति आधुनिक है। इसका प्रमाण हमें माइनॉरिटी राइट्स ग्रुप इंटरनेशनल द्वारा दी गई परिभाषा से पता चलता है। उनके अनुसार आदिवासी शब्द “भारत के कई मूल लोगों” का सामूहिक नाम है। उनके अनुसार यह शब्द दो हिंदी शब्दों से बना है एक आदि का अर्थ है 'शुरुआत' और वासी जिसका अर्थ है 'निवासी'।

आदिवासी शब्द के प्रयोग को लेकर उनका कहना है- “यह 1930 के दशकों में गढ़ा गया था संभवतः भारत के विभिन्न मूलनिवासी लोगों के बीच पहचान की भावना पैदा करने के लिए एक राजनीतिक आंदोलन का परिणाम था।”[6] उपर्युक्त संदर्भों के संबंध में दास गुप्ता और संगीता कहते हैं कि 'आदिवासी शब्द राजनीतिक रूप से मुखर शब्द है और यह 1938 में पहली बार राजनीतिक संदर्भ में उपयोग में आया।’[7]

'जनजाति' शब्द की उत्पत्ति ग्रीक सिटी के रोमन साम्राज्य के गठन के साथ उत्पन्न मानी जाती है जनजाति शब्द लैटिन शब्द 'TRIBUS' से लिया गया है जिसका अर्थ है- "एक समुदाय के गठन करने वाले व्यक्तियों के समूह और एक सामान्य पूर्वज से वंश का दावा करने वाला समूह हो गया।"[8]

'जनजातीय' शब्द यूरोप में भी राष्ट्रवाद के उभरने के साथ ही इस शब्द का प्रयोग किया जाने लगा, जिसका तात्पर्य है एक विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले लोगों के लिए एक निश्चित भाषा बोलने वाले लोगों के सामाजिक राजनीतिक स्थिति को दर्शाने के लिए किया गया जाने लगा था।

भारत में आदिवासियों को 'ट्राइब' और इसका हिंदी रूपांतरण 'जनजाति' यह नाम अंग्रेजों द्वारा दिया गया था। किंतु आदिवासी और देशज शब्द एक दूसरे के निकटतम पर्याय रूप है और 'आदिवासी' भारतीय भूमि पर निवास कर रहे देश के मूल निवासियों या आदि निवासियों के वंशजों के रूप में जाने जाते हैं और उन तमाम समुदायों और लोगों के लिए प्रयोग किया जाने लगा एक व्यापक शब्द है।

आदिवासी शब्द में 'इंडीजीनस' या देशज का भाव देखने को मिलता है और 'एबोरिजिनल' या 'मूलनिवासी' में भी शामिल है। प्रिमिटिव (आदिम) नेटिव (मूलनिवासी) और बैंड आदिम समूह, कबीला) शब्द आदिवासियों की आदिम समय और उनके स्थान विशेष पर उपस्थित का बोध कराते हैं क्योंकि आदिवासी शब्द ही पूरी व्यवस्था के साथ इन पदों की तुलना में अधिक उपयुक्त है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आदिवासी शब्द और देसी शब्द ही एक दूसरे के निकटतम जान पड़ते हैं और आदिवासियों को अभिव्यक्त करने के लिए सक्षम है।

इस संदर्भ में जगन्नाथ पाथी के इस कथन को देखा जा सकता है- "भारत के आदिवासी देशज लोग हैं या नहीं इस बात का उनके लिए उपयोग किए जाने वाले शब्दों की सटीकता से कोई फर्क नहीं पड़ता, पर क्योंकि आदिवासियों और देशज लोगों की समकालीन समस्याएं और संघर्ष एक से हैं और क्योंकि राष्ट्र संघ के वर्तमान प्रयासों का उद्देश्य लोगों के लिए उपलब्ध नियमों में सुधार है, अतः अंतरराष्ट्रीय नियमावली के लिए भारत की अनुसूचित जनजातियों को देशज लोग

माना जाना चाहिए। इस प्रयास से लोकतंत्र, गणतंत्र और न्याय के कारकों को पुख्ता करने का नया चलन स्थापित होगा और वर्तमान में चल रहे संघर्षों का हल निकलेगा। उनके आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास पर उनके ही नियंत्रण हेतु कारकों को स्थापित करने, आंतरिक आत्मनिर्णय का सिद्धांत एक मार्ग प्रदर्शक की तरह होगा।"[9]

इससे यह विदित होता है कि आदिवासी और देशज शब्द आदिवासियों के लिए सटीक शब्द प्रयोग माना जाना चाहिए। आदिवासियों के संबंध में एक विचार यह भी है कि आर्यों के आगमन के पश्चात आदिवासियों को अपने मूल स्थानों से खदेड़ा गया जिसके परिणाम स्वरूप वह जंगलों पहाड़ियों में बस गए। अन्यत्र हम कह सकते हैं आदिवासी अपने को सुरक्षित रखने के लिए वन में बस गए और फिर कभी जंगलों से बाहर निकल ही नहीं पाए और इस कारण वर्तमान में वे आदिवासी कहलाए गए।

आर्यों के आगमन के संदर्भ में रामशरण शर्मा लिखते हैं- "इस बात के पुरातात्विक और भाषाई साक्ष्य हैं, जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि आर्य भाषा-भाषी मध्य एशिया से भारत आए।"[10]

हरिश्चंद्र उप्रेती लिखते हैं-"आदिवासी भारतवर्ष की वास्तविक तथा स्वदेशी उपज हैं; जिनकी उपस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति विदेशी है।"[11]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिवासी शब्द की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में एकमत नजर नहीं आता है। आदिवासियों की उत्पत्ति किस मानव वंश से हुई है यह प्रश्न भी अनुत्तरित है।

1.2 आदिवासी अर्थ एवं परिभाषाएं

आदिवासी शब्द दो शब्दों से बना है आदि और वासी। आदि का अर्थ 'प्रारंभ' और वासी का अर्थ 'निवास करने वाला' है। अतः वे लोग जो धरती के मूल निवासी हैं जो जंगलों, पहाड़ियों और दुर्गम घाटियों में निवास करने वाले हैं।

आदिवासी शब्द का अर्थ विभिन्न शब्दकोशों में इस प्रकार है-

मानक हिंदी शब्दकोश के अनुसार- "किसी स्थान पर रहने वाले वाहन के मूल निवासी यानी आदिवासी है।"[12]

हिंदी विश्वकोश के अनुसार- "आदिवासी शब्द का प्रयोग किसी क्षेत्र के मूल निवासियों के लिए किया जाना चाहिए, परंतु संसार के विभिन्न भू-भागों में जहां अलग-अलग धाराओं में अलग-अलग क्षेत्रों से आकर लोग बसे हैं। उस विशिष्ट भाग के प्राचीनतम अथवा प्राचीन निवासियों के लिए भी इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ इंडियन अमेरिका के आदिवासी कहे जाते हैं और प्राचीन साहित्य में दस्यु, निषाद, आदि के रूप में जिन विभिन्न प्रजातीय समूहों का उल्लेख किया जाता है उसके वंशज भारत में आदिवासी माने जाते हैं।"[13]

भारतीय संस्कृति कोश में आदिवासियों के संबंध में लिखा है- "नागर संस्कृति से दूर रहने वाले निवासी एवं आर्य और द्रविड़ हिंदू मानव समाज को छोड़कर उनसे भी पूर्व भारत या अन्य विदेशी से भारत के पर्वत, पहाड़ियों, जंगल में रहने वाले वन्य जाति को आदिवासी कहा जाता है।"[14]

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्य और द्रविड़ इन दोनों जातियों को छोड़कर और उनसे पूर्व जो भारत में आए या अन्य देशों से आकर जंगलों पहाड़ियों में निवास करने वाले आदिवासी कहलाए हैं।

समाजशास्त्र विश्वकोश के अनुसार- "किसी देश-प्रदेश के वे लोग जो आदिकाल से यहां निवास कर रहे हैं, उन्हें उस देश-प्रदेश का आदिवासी कहा जाता है।"[15]

लोकभारती बृहद प्रामाणिक कोश के अनुसार आदि शब्द का अर्थ है- "आरंभ का पहला शुरू कावासी शब्द का। वासी शब्द का अर्थ है "रहने वाला"। इस प्रकार आदिवासी शब्द का अर्थ हुआ किसी स्थान पर रहने वाला मूलनिवासी।"[16]

उपरोक्त शब्दकोशों के अनुसार हम कह सकते हैं कि जो लोग इस धरती पर आदिकाल से निवास कर रहे हैं; जिन्हें नागर संस्कृति से दूर पहाड़ियों, जंगलों और

घाटियों में निवास करते आ रहे हैं तथा उन्हें आदिम शिकारी अथवा मछुवे कहकर संबोधित किया जाता है वह आदिवासी कहलाते हैं।

विभिन्न विद्वानों ने आदिवासी शब्द की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी है जो निम्नलिखित है:-

आदिवासी की परिभाषा देते हुए प्रसिद्ध नेतृत्व शास्त्री डॉ. डी. एन मजूमदार के अनुसार- "एक ऐसा सामाजिक समूह की जो भौगोलिक दृष्टि से एक दूसरे से जुड़ा हुआ है, एक समान है। लेकिन अलग-अलग काम करनेवाला है। ऐसी जमात जो कि अपनी बोली-भाषा, वंशज को पहचान कर अन्य जमात से सामाजिक रूप में अंतर रखती है तथा अपने क्षेत्र में अधिकार का उपभोग स्वयं भक्ति है, अन्य जमातों और आदिवासी जमातों में अंतर है, इस जमात की सभी कल्पनाएं प्रकृति पर आधारित होती है, इसलिए आदिवासी जमात और अन्य जमात में बहुत बड़ा अंतर है।"[17] इस परिभाषा से यह विदित होता है कि विश्व के सभी आदिवासी समुदायों की भौगोलिक दृष्टि एक समान है। विभिन्न क्षेत्र के होने के कारण उनकी संस्कृति में भिन्नता है तथा जिनकी स्वयं की स्वायत्तता होती है। जो प्रकृति पूजा है, वह आदिवासी है।

वेरियर एल्विन ने अपनी पुस्तक 'एब्सोरिजिनल्स' में लिखा है- "आदिवासी भारत वर्ष की वास्तविक स्वदेशी उपज है, जिनकी उपस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति विदेशी है, ये वे प्राचीन लोग हैं जिनके नैतिक आधार और दावे हजारों वर्ष पुराने हैं वह सबसे पहले यहां आए उन पर सबसे पहले विचार होना चाहिए।"[18] इन्होंने प्राचीन लोगों को तथा सबसे पहले आए हुए लोगों को ही आदिवासी मानते हैं।

इंपीरियल गजेटियर के अनुसार- "एक आदिम जाति परिवारों का एक समूह है, जिसका एक नाम होता है जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा बोलते हैं तथा एक सामान्य क्षेत्र में या तो वास्तव में रहते हैं या अपने को किसी क्षेत्र से संबंधित मानते हैं तथा यह समूह अंतर्विवाही होते हैं।"[19]

हरिराम मीणा ने आदिवासियों को परिभाषित करते हुए लिखते हैं- “जो जन समूह विजेताओं की पकड़ से बाहर रहे खदेड़ दिए गए के दिए या बचकर दूर दराज सुरक्षित दुर्गम जंगलों व पहाड़ियों में शरण लेने को विवश हुए वे आज के आदिवासी कहे जा सकते हैं।”[20]

रत्नाकर भेंगरा तथा **कर विजोय** के अनुसार- “आदिवासी के शाब्दिक के शाब्दिक अर्थ से ज्ञात होता है आदि निवासी यानी किसी स्थान पर निवास करने वाला या ‘प्रथम निवासी'।”[21]

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से यह ज्ञात होता है कि आदिवासियों की विशिष्ट संस्कृति परंपराएं हैं, सामान भौगोलिक दृष्टि, आर्यों द्वारा उन्हें सेवक, दास, शुद्ध के रूप में व्यवहार किया गया विशिष्ट भू-भाग के प्राचीनतम निवासी तथा जंगल घाटियों में शरण लेने वाले लोगों को आदिवासी कहा गया है।

1.3 आदिवासी चिंतन: भारतीय तथा पाश्चात्य

भारतीय विद्वानों तथा पाश्चात्य विद्वानों ने आदिवासी शब्दों को की व्याख्या करने के कोशिश की है जो निम्नलिखित है:-

रवींद्रनाथ मुखर्जी के अनुसार-“एक जनजाति वह क्षेत्रीय समूह है जो भू-भाग, भाषा, सामाजिक नियम और आर्थिक कार्य आदि विषयों में एक समानता के सूत्र में बंधा होता है।”[22]

श्यामचरण दुबे आदिवासियों के संबंध में लिखते हैं- “वास्तव में जनजाति व्यक्तियों का एक वह समूह है जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में आवासीय विचरण करता है। और जो किसी आदि पूर्वज को ही अपना उद्गम मानता है तथा जिसकी एक सामान्य संस्कृत होती है, और जो आज भी आधुनिक सभ्यता के प्रभाव से परे हैं।”[23]

आदिवासी शब्द की व्याख्या करते हुए डॉक्टर भीमराव पिंगले लिखते हैं- “आर्य तथा द्रविड़ यह भारत के दो बड़े मानव समाज को छोड़कर उसकी पूर्व भारत में

रहने वाले तथा विदेश से आए हुए सभी वन एवं पर्वत आदि के आश्रय से स्थाई हुई जमात वन्य जाति या आदिवासी कहलाती है।"[24]

डॉ. पी. आर नायडू के अनुसार- "आदिवासियों को जिन अन्य नाम से जाना जाता है उनमें वनवासी, जनजाति, पहाड़ी, आदिम जाति तथा अनुसूचित जनजाति प्रमुख है।"[25]

आदिवासी शब्द की परिभाषा देते हुए डॉ. गोविंद गारे लिखते हैं- "आदिवासी ही इस देश के मूल निवासी है बाहर से आए हुए आर्यों ने भारत के सभी प्रति पर वर्चस्व प्रस्तावित करते हुए साम्राज्य विस्तार किया परिणाम स्वरूप आदिवासी हमेशा के लिए नगर संस्कृति से दूर रहे साथ ही साथ अन्य लोगों ने उनकी उपेक्षा की।"[26]

पाश्चात्य विद्वानों ने भी आदिवासी शब्द की व्याख्या करने का प्रयास किया है-

समाजशास्त्री विलियम पी स्कॉट के अनुसार- "एक ऐसा ग्रामीण समुदाय या ग्रामीण समुदायों का ऐसा समूह; जिसकी समान भूमि हो और जिस समुदाय के व्यक्तियों का जीवन आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे के साथ ओत- प्रोत हो जनजाति कहलाता है।"[27]

डॉ. सिव्हर्स की परिभाषा- "जिस समूह के हर एक सदस्य एक समान बोली भाषा बोलते हैं, संकट समय तथा युद्ध जन्य परिस्थितियों में एक साथ लड़ते हैं, ऐसे सरल भोले-भाले समूहों को आदिवासी समाज कहा जाता है।"[28]

गिलीन ने आदिवासियों के संबंध में लिखा है- "एक विशेष भू-प्रदेश में रहने वाले जो एक समान बोली भाषा बोलते हैं, एक समान सांस्कृतिक जीवन जीते हैं जिन्हें अक्षरों का ज्ञान नहीं क्षेत्रीय गुट समूह को को आदिवासी कहा जाता है।"[29]

मैडोक के अनुसार- "यह एक सामाजिक समूह है जिसकी अलग भाषा होती है तथा भिन्न संस्कृति एवं स्वतंत्र राजनीतिक संगठन होता है।"[30]

क्रोबर के अनुसार- "आदिम जनजातियों ऐसे लोगों का समूह होता है जिसकी अपनी एक सामान्य संस्कृत होती है।"[31]

रिजर्व ने आदिवासियों के संबंध में कहा है- "यह एक साधारण प्रकार का सामाजिक समूह है, जिसके सदस्य एक सामान्य बोली का प्रयोग करते हैं तथा युद्ध जैसे सामान्य उद्देश्यों के सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं।"[32]

लूसी मेयेर आदिवासियों की व्याख्या करते हुए लिखते हैं- "एक जनजाति सामान संस्कृति वाली जनसंख्या का स्वतंत्र राजनीतिक विभाजन है।"[33]

उपर्युक्त दोनों भारतीय तथा पाश्चात्य मतों से यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी एक ऐसा सामाजिक समूह है जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हैं तथा जिनकी अपनी संस्कृति है, जो मुख्य समाज से भिन्न है। उनकी एक समान बोली होती है जो निरक्षर हैं और संकट आने पर एक गुट समूह बनकर युद्ध करने वाले हैं। अपनी स्वतंत्र राजनीतिक संगठन होता है तथा वह भोले-भाले और अपने में परिपूर्ण होते हैं जिनके पूर्वज आर्य तथा द्रविड़ यह बड़े समाज को छोड़ उसके पूर्व से भारत में निवास कर रहे हैं। वे ऐसे लोग हैं जो अपने ही अधिकारों से वंचित या पिछड़े हुए हैं उन्हें आदिवासी कहा गया है।

आदिवासी शब्द को लेकर भारतीय संविधान सभा तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर काफी मतभेद दिखाई देता है। आदिवासी या मूलनिवासी शब्द को लेकर अलग-अलग कार्यकर्ताओं और संगठनों में आदिवासी या मूलनिवासी शब्द को एक भ्रांत संज्ञा के रूप में मानते हैं।

भारत में जब संविधान बनाने की प्रक्रिया(1946-1949) चल रही थी तब संविधान सभा के बहस के दौरान जनजातियों की मुद्दों को लेकर बात रखी गई। संविधान सभा में श्री जयपाल सिंह मुंडा जो आदिवासियों के नेतृत्व कर रहे थे, जिन्हें आदिम जनजाति, पिछड़ी जनजाति, जंगली आदि विभिन्न रूप से जाने जाते थे। उन्होंने अपना तर्क अखिल भारतीय कांग्रेस की आयोजन समिति के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद के एक अवलोकन का जिक्र करते हुए कहा कि 'वे जो सिंधु

घाटी के लोग थे और अन्य सभी घुसपैठिए हैं।' "वहां के लोग भारत के मूल निवासी माने जाते हैं।"[34]

उन्होंने अपना मत अध्यक्ष के समक्ष रखते हुए कहा- "मैं चाहता हूं कि आप अपनी अनुवाद समिति को निर्देश जारी करें कि अनुसूचित जनजातियों का अनुवाद 'आदिवासी' अर्थात मूलनिवासी या मूल लोक होना चाहिए। आदिवासी शब्द की एक गरिमा है… क्यों इस पुराने अपशब्द जनजाति (वनवासी) का इस्तेमाल किया जा रहा है।"[35]

इनके मत का विरोध करते हुए कन्हैयलाल माणिकलाल मुंशी ने आदिवासी शब्द को स्वीकार न करते हुए कहा कि- "यह शब्द अलगाववादी प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है। उन्होंने यह कहते हुए अपनी बात रखी कि अनुसूचित जनजाति की समस्याएं एक प्रांत से दूसरे प्रांत में भिन्न होती है और कभी-कभी जिले से जिले में भी।"[36]

अतः हम कह सकते हैं कि उनकी मांग के अनुसार आदिवासी शब्द को स्वीकार नहीं किया और डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर द्वारा दिया गया अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति को संविधान के अनुच्छेद 342 में वर्णित है। इसे ही प्राथमिकता दी गई।

मूल निवासी शब्द को लेकर एशियाई देशों में इस शब्द के प्रयोग पर आपत्ति जताई जाती है। इनमें चीन, बांग्लादेश, म्यांमार, इंडोनेशिया द्वारा इस पर सहमति दिखाई नहीं देती है। उनका सामान्य दृष्टिकोण है की 'मूलनिवासी' शब्द यह यूरोपीय औपनिवेशिक समझौते के सामान्य अनुभव का एक उत्पाद है जो एशिया के उन हिस्सों के लिए मौलिक रूप से अनुपयुक्त है, जिन्होंने प्रचुर यूरोपीय उपनिवेशों के बसाए जाने का अनुभव नहीं किया।"[37]

जोस आर मार्टिनेज कोबो ने मूलनिवासी की अवधारणा इस प्रकार दी है- "मूल निवासी समुदाय लोग और राष्ट्र है जो आक्रमणों से पूर्व और उपनिवेशों की स्थापना से पूर्व के समाजों के साथ एक ऐतिहासिक निरंतर रखते हुए अपने क्षेत्र में विकसित हुए और खुद को उन क्षेत्रों या उनके कुछ हिस्सों पर वर्तमान में प्रभावी

समाज के इधर घटकों से अलग मानते हैं। वे वर्तमान में समाज के गैर प्रभावी घटकों के रूप में विद्यमान है और अपने स्वयं की सांस्कृतिक परिपाटियों, सामाजिक संस्थाओं और कानूनी प्रणालियों के अनुसार लोगों के रूप में अपने निरंतर अस्तित्व के आधार के रूप में अपने पूर्वजों के क्षेत्र और उनकी जातीय पहचान को संरक्षित करने विकसित करने और भावी पीढ़ियां तक प्रसारित करने के लिए दृढ़ संकल्पित है।"[38] उपरोक्त कथन आदिवासियों को मूलनिवासी होने के दायरे में कुछ हद तक शामिल करता है और मूलनिवासी होने के तत्वों को स्पष्टीकरण देने का भी प्रयास करता है।

दास गुप्ता, संयुक्ता ने जनजातियों का सामान्य परिभाषा इस प्रकार दी है- "एक सामान्य नाम वाले परिवारों या परिवारों के समूह के रूप में परिभाषित करने का उपक्रम किया, जो किसी नियम के तहत के किसी विशिष्ट व्यवसाय को नहीं दर्शाता है; आम तौर पर एक पौराणिक या ऐतिहासिक पूर्वज और कभी-कभी रिश्तेदारी का परंपरा के बजाय रक्तपात युक्त संघर्ष के दायित्वों के माध्यम से एक संगठित किया जाता है; आम तौर पर एक ही भाषा बोलते हैं और देश के एक निश्चित हिस्से पर कब्जा करते या कब्जा करने का दावा करते हैं।"[39]

मूल निवासी शब्द के अलावा पहले राष्ट्र, पहले लोग, स्वदेशी लोग जैसे शब्द का प्रयोग किया जा रहा है। मूल शब्द यह संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रयोग किया गया है किंतु इस शब्द को संपूर्ण विश्व में स्वीकार नहीं गया स्वयं जनजातीय आदिवासी शब्द के अपेक्षा प्रथम राष्ट्र शब्द को संसद पसंद करते हैं।"[40] कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि देशों में 'प्रथम राष्ट्र' को ही स्वीकार करते हैं और कुछ लोग मानते हैं कि यह शब्द भी जनजातीय समूहों के लिए अप्रिय है विशेष रूप से जब एक अंतरराष्ट्रीय समग्र और सार्वभौमिक तरीके से उपयोग किया जाता है।

आर. आई. एस परिचर्चा पत्र में कहा गया कि मूलनिवासी शब्द का प्रयोग अकादमिक और सक्रिय साहित्य के लोगों द्वारा भारत के जनजातीय लोगों को संबोधित करने हेतु 'मूल' शब्द का इस्तेमाल किया जा रहा है। वह अपने तर्क इस बात पर रखते हैं कि जनजातीय लोग भारत के प्रारंभिक निवासी हैं।"[41] यह भी कहा गया की जनजातियों को यह डर है कि यदि जनजातीय लोगों को मूलनिवासी

नहीं माना गया तो मूल निवासियों के मानवाधिकारों से वंचित किया जा सकता है।

'कार्लसन कहते हैं कि भारत में कई जनजातीय संगठन अपने अधिकारों को स्थापित करने के लिए अपने संघर्ष को इस दावे पर आधारित करते हैं कि वे देश के मूल निवासी लोग हैं और मूल निवासियों के अधिकारों को मजबूत करने में लगे राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय नेटवर्कों में भाग लेते हैं।'[42]

इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि आदिवासी शब्द को लेकर विभिन्न अंतरराष्ट्रीय स्तर पर तथा भारतीय संविधान सभा में इस पर व्यापक तौर पर चर्चा किया गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी शब्द को लेकर विद्वानों में एक मत दिखाई नहीं देता तथा भारतीय संविधान में भी आदिवासी शब्द के लिए अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति को ही प्राथमिकता दी गई है। यह भी दृष्टिगोचर होता है कि विद्वानों के मतों से आदिवासी शब्द सार्वभौमिक रूप को स्वीकारा नहीं गया है, साथ ही विभिन्न देशों में आदिवासियों के लिए विभिन्न नाम है। स्वयं यह अपेक्षा कर रखते हैं कि उन्हें इस नाम से पुकारा जाए। अतः हम कह सकते हैं कि आदिवासी शब्द जो है वह अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति के पर्यायी रूप में है।

1.4 आदिवासी कहानियों की प्रवृत्तियां

प्रत्येक साहित्य की अपनी-अपनी प्रवृत्ति होती है। इस तरह आदिवासी कहानियों की प्रवृत्ति भी है। जब कोई रचनाकार या साहित्यकार अपनी रचनात्मकता को समाज में प्रस्तुत करता है तो वह किसी न किसी उद्देश्य के साथ तथा ऐसे तत्वों के सहारे अपने बौद्धिक विचारों को व्यक्त करता है। जिससे समाज की विसंगतियों, कुरीतियों, बाह्य आडंबरों का विरोध करता है तथा समाज में इन सभी तत्वों का खंडन करता है। इसके संबंध में युवा अध्येता अजय पूर्ति आदिवासी कहानियों की विशेषताओं को रेखांकित करते हुए लिखते हैं- "इन कहानियों में आदिवासियों के रीति-रिवाजों, उनके विश्वास, अंधविश्वास, रुचियां, उनकी मेहनतकश जिंदगी,

खेलों के प्रति उनका प्रेम, प्रकृति के साथ उनका जुड़ाव, अस्तित्व के लिए उनका संघर्ष, बाहरी दुनिया के साथ उनके प्रतिस्पर्धा, उनके संगठन शक्ति, उनकी अद्भुत सरलता और अन्य समाज में स्वयं को स्थापित करने की विवशता, लोक धुनों में खोए रहने की प्रवृत्ति, पर्व त्योहार तथा पशुओं से उनका लगाव, जीवन के प्रति उनका उल्लास नजरिया, सरल-सहज जीवन जीने की आदत, शिक्षा- दीक्षा की आवश्यकता आदि विशेषताएं प्रकट हुई है।"[43]

आगे आदिवासी कहानियों की प्रवृत्तियों पर एक-एक कर उनके उदाहरण सहित विश्लेषण प्रस्तुत है।

1.जीवन शैली का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत होता है।

आदिवासी कहानियों में आदिवासियों के जीवन शैली का चित्रण मिलता है। उनके प्रकृति के साथ, सृष्टि और सभी अन्य जीवन के साथ उनका संबंध, आपसी सहभागिता, समुदायिकता तथा उनके समग्र संसार और परिवेश का चित्रण मिलता है। इसका उदाहरण वोटर भेंगरा की कहानी 'जंगल की ललकार' इस कहानी में देखी जा सकती है जहां पर पांडू नामक पात्र कहता है- "हम अपना जंगल लगा रहे हैं अब्बा! यह गांव का जंगल होगा। इसे सरकार भी नहीं ले सकती है। वह हमारी रैयती खूंटकटी जमीन है।"[44]

2.आदिवासी दर्शन मुखरित होता है।

आदिवासी कहानियों में आदिवासियों का दर्शन चित्रित होता है। प्रकृति को पूर्वजों की देन माना जाता है। जो दर्शन पूर्वजों द्वारा दी गई है उसे बिना प्रश्न उठाएं परंपरागत रूप से अपने घरों-परिवारों में अपनाया जाता है और पीढ़ी दर पीढ़ी के आगे बढ़ाया जा रहा है। यही दर्शन कहानियों में भी प्राप्त होता है। इसका उदाहरण मराठी कहानीकार संजय लोहकरे की कहानी 'ढोल' में दिखाया गया है। इस कहानी में आमश्या डोहल्या नामक पात्र कहता है- "इस बार होली में इतना ढोल बजाएंगे… पूरा का पूरा सतपुड़ा दनदना उठेगा।"[45] इस प्रकार आदिवासियों का दर्शन तथा परंपरागत होता है।

3.आदिवासी कहानियों में बहुभाषिक संसार है। आदिवासी साहित्य मुख्यतः मातृभाषाओं में लिखा जाता है तथा वर्तमान में हिंदी तथा अंग्रेजी के साथ अन्य भाषाओं में लिखा जा रहा है। इसी के साथ आदिवासी भाषाओं से कहानियों का अनुवाद कर पाठकों तक पहुंचा जा रहा है। कहानियों में द्विभाषी का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। उदाहरण के लिए कृष्ण टुडू संथाली तथा हिंदी में लिखते हैं। बादल हेंब्रम संथाली, बांग्ला, अंग्रेजी में लिखते हैं तथा हरिराम मीणा जो राजस्थानी और हिंदी में लिखते हैं। ऐसे अनेक कहानीकार हैं जो अपने मातृभाषाओं के अलावा हिंदी के प्रयोग के साथ अन्य भाषाओं में उनकी कहानियां मिलती है।

4.आदिवासियों की संस्कृति का चित्रण प्रस्तुत होता है।

आदिवासी कहानियों आदिवासी समाज की मान्यताएं, रहन-सहन, रीति- रिवाज तथा त्योहारों का चित्रण प्राप्त होता है। इसका उदाहरण 'भंवर' कहानी के माध्यम से देख सकते हैं। इसका वर्णन इस प्रकार है- 'आंगन में कर्म पूजा का आयोजन था।… बड़ी बेटी ने 'करम डलिया' करम देवता के सम्मुख रखी। तीनों ने बड़ी श्रद्धा से करम देवता को झुककर नमस्कार किया।'[46] इसका और एक उदाहरण 'छोटी बहू' इस कहानी में भी देखा जा सकता है। जहां पर मठा कहता है- "मेरी भौजी ने ही इसे पसंद किया था। गांव के लोगों ने तो मना किया था कि परिवार के छोटे लड़के से परिवार की छोटी लड़की का विवाह नहीं किया जाता उसे अनर्थ होता है।"[47] इस प्रकार आदिवासियों की मान्यताएं दृष्टिगोचर होती है।

5.सामूहिक की प्रधानता होती है।

सामूहिकता आदिवासी समाज की प्रमुख विशेषता है। वे समुदाय में रहते हैं और सभी कार्य समूह में ही किया जाता है। इसका उदाहरण कृष्ण टुडू की 'एक बिता जमीन' कहानी में दिखाई देता है। इसमें सरला नामक आदिवासी स्त्री अपने घर से भाग कर अपने प्रेमी डॉ. सिमाल के पास आती है। उन दोनों को दरोगा ने कोर्ट में विवाह करने का प्रस्ताव रखता है लेकिन सिमाल अपने समुदाय में वापस लौटकर अपनी संस्कृति रीति रिवाज के साथ ही विवाह करना चाहता है। इसी प्रकार दूसरी

कहानी ‘सच्चा सुख' प्रीति मुर्मू की कहानी में सामूहिकता नजर आती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आदिवासियों में सामूहिकता की प्रधानता होती है।

6.कहानियों में मुख्य रूप से प्रकृति संरक्षण प्रकट होता है।

आदिवासियों का जल, जंगल, जमीन पर जीवन निर्भर रहता है। उनका जीवन इसके बिना अधूरा है। प्रकृति के बदौलत ही आदिवासीयत जिंदा है। इसका उदाहरण 'धरती का सच’ विक्रम जी चौधरी की कहानी से मिलती है। जहां पर आदिवासियों को प्रकृति के संबंध में इतना अच्छा ज्ञान होता है यह पता चलता है। मनकू अपने पोते मोयलू से कहता है_ “आज तुमने बड़ी-बड़ी बांस की झाड़ियां देखीं, उन पर अभी छोटे फूल लगेंगे, इन फूलों में बीज बनेंगे। इस बीच को इंद कहते हैं। बांस पर चालीस साल से लेकर साठ- सत्तर साल में एक बार बीज आता है।... इंद आने के साथ ही बांस मर जाता है। जो बीज धरती पर गिरता है, और वह बीज अगले साल घास के रूप में निकलता है और वही घास बड़ा होने पर बांस बनता है। बांस पर फूल आने को इंद कहते हैं।”[48] इससे यह ज्ञात होता है कि आदिवासियों का प्रकृति के साथ कितना गहरा संबंध है और सदियों से प्रकृति की देखरेख करते आ रहे हैं।

7.आदिवासी स्त्रियों का शोषण और प्रतिरोध दिखाई देता है।

आदिवासी स्त्रियों का शोषण सदियों से होता रहा है चाहे वह शारीरिक हो, मानसिक हो, हर क्षेत्र में स्त्रियों को पुरुषसत्तात्मक समाज द्वारा उनका लगातार दोहन हो रहा है। इसका उदाहरण ‘वोल्टर भेंगरा’ की कहानी 'लासा' के माध्यम से देखा जा सकता है। जहां पर आदिवासी किशोरियों को महानगरों तथा शहरों में श्रम के लिए ले जाया जाता है तथा एजेंटों द्वारा उन्हें छला जाता है और उनका शारीरिक शोषण किया जाता है। उसी तरह 'दगा' जी. आर मांडवी की कहानी में भी स्त्री शोषण का चित्रण प्राप्त होता है।

8.वेदना, आक्रोश, पीड़ा विद्यमान होती है।

कहानियों में आदिवासियों की वेदना, आक्रोश, पीड़ा को उजागर होती है। ‘ मोहताज’ सुन्हेर सिंह ताराम की कहानी में समारू नामक पात्र है, जो गोंड समुदाय

से है। वह अर्थाभाव के कारण मजदूरी करता है और अपनी बेटी विद्या को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लायक बनाता है तथा पंचायत इंस्पेक्टर बन जाती है। वह तेली जाति के एक अकाउंटेंट से विवाह करती है। साहूबाबू ने उसके पैसों से घर, में खेती बाड़ी, कूँआ तालाब बनाता है फिर सुमार की बेटी विद्या को अपने जात से निष्कासित कर देता है। इस प्रकार उनके वेदना दृष्टिगोचर होता है और मुख्यधारा का समाज द्वारा उन्हें छला जाता है ताकि वो अपना वर्चस्व स्थापित करें। उसी प्रकार 'नया लूगड़ा' अॅड. रामराजे आत्म की कहानी में आदिवासी स्त्री की पीड़ा को दर्शाया गया है। उसने अपने रोजमर्रा के जीवन में से कुछ पैसे बचाकर नया लूगड़ा खरीदा लेकिन सवर्ण वर्ग का एक व्यक्ति से यह बर्दाश्त नहीं हुआ। और उसे वस्त्रहीन कर दिया गया। उसका संवाद इस प्रकार है –'दांत चबाकर उसने उसके बाल खींचे, लात घूंसे मारकर लुगड़ा उसके अंग से खींचने लगा-"साली हर हरामखोर।" वह झटपट लुगड़ा छुड़ाने लगी। वह जोर-जोर से चिल्लाती, रोती बिलखती, हाथ जोड़ती, मगर वह राक्षस, पापी, वासना से हैवान बने आदमी ने उसे जूते की नोंक मार मार कर नंगा कर दिया।'[49] इस प्रकार आदिवासियों की पीड़ा, वेदना उद्धरित होता है।

9.कहानियों में प्रतीकात्मकता विद्यमान होती है।

कहानियों में प्रतीकात्मकता को भी महत्व दिया गया है। प्रतीकों के माध्यम से आदिवासियों की जीवन मूल्य, उनकी संस्कृति में जो परिवर्तन आ रहे हैं तथा उनकी समस्याओं और मुख्यधारा के संपर्क में आने से अपसंस्कृति का बढ़ता प्रभाव जैसे विषयों को प्रतीकों के माध्यम से दर्शाया गया है। रामदयाल मुंडा की कहानी 'खरगोश का कष्ट' यह भी प्रतीकात्मक कहानी है जिसमें खरगोश और सिंह की कथा को बताया गया है। जब आदिवासी समाज का कोई व्यक्ति सवर्ण वर्ग के समाज में जाता है तो वह उसी की भाषा बोलने लगता है और कहता है- "खरगोश की तरह रहना छोड़कर सिंह की तरह रहने की आदत डालें।"[50] इससे यह ज्ञात होता है कि मुख्यधारा के समाज के संपर्क में आने से आदिवासियों की अस्मिता, पहचान, संस्कृति पर गहरा संकट मंडरा रहा है। इस पर प्रकाश डाला गया है।

10.स्त्री सशक्तिकरण का चित्रण विद्यमान है।

वर्तमान में स्त्री सशक्तिकरण पर अत्यधिक बल दिया गया है। आदिवासी समाज में स्त्री सशक्तिकरण को लेकर अनेक कहानियाँ लिखी जा रही है। उनमें से कुछ है 'धाड़' सुनील गायकवाड की कहानी है इसमें जानकी नामक आदिवासी स्त्री है। अपने जीवन यापन के लिए शराब बेचती है। इंदर पटेल की भ्रष्ट नजर जानकी पर है लेकिन जानकी ने उसका विरोध करते हुए कहा- "पटेल हम मेहनत मजदूरी करके खाने वाले लोग हैं। हम हराम का पैसा नहीं लेते। मैं शराब का धंधा करती हूं, मतलब मैं धंधे वाली औरत नहीं हूं। फिर से तू इधर आया न तो मैं तेरी टांग तोड़कर तेरे हाथों में दे दूंगी। मुझे तू अबला-औरत मत समझना।"[51] इस वाक्य से यह पता चलता है कि आदिवासी स्त्री अपने स्वाभिमान को और अत्याचार के खिलाफ जागरूक हो रही है तथा अन्य के खिलाफ आवाज उठा रही है। इसी के साथ 'ईरुक' वसुधा मंडाली की कहानी में भी स्त्री सशक्तिकरण का चित्रण देखने को मिलता है।

11.आदिवासियों की समस्याएं मुखरित होती है।

समाज लोगों से बनता है। प्रत्येक समाज में अपनी-अपनी परंपरा, संस्कृति तथा मान्यताएं होती है। ऐसी मान्यताएं भी विद्यमान है जो सदियों से रूढ़ हो चुकी होती है। आदिवासी समाज में ऐसी अनेक समस्याएं हैं जो समाज में फैली हुई है। मंजुल सांगा की कहानी 'कनकट्टी दीदी' में देखी जा सकती है। इस कहानी में मोयलेन नामक पात्र है जो आदिवासी समाज में फैली अंधविश्वास का विरोध करती है। इस कहानी में ऐसी मान्यताएं दिखाई देती है जो आदिवासी समाज में विद्यमान है वह इस प्रकार है- 'महिलाएं घरों की छत पर नहीं चढ़ सकती हैं तथा यदि कोई लड़की हाल को छू ले तो बारिश नहीं होती है और फसल भी अच्छी नहीं होती है। इस प्रकार के रूढ़िगत मान्यताओं का विरोध मोयलेन करती है। इसी तरह शांति खलको की कहानी 'मेरे बाप की शादी' इस कहानी में भ्रूण हत्या की समस्या तथा 'हम खो गए' सिद्धेश्वर सरदार की कहानी में सुलोचना के पूर्वजों को विस्थापन तथा पलायन का जो दंश झेलना पड़ा है उसका चित्र मिलता है। हेसले सारू की 'दूसरी औरत' कहानी में बहु- प्रथा समस्या का चित्रण भी मिलता है।

12.आदिवासी कहानियों में रंग नस्ल धर्म आदि पूर्वाग्रह नहीं है।

आदिवासी समाज में नस्लीय भेदभाव नहीं होता है। वे मानवता पर विश्वास करने वाले हैं। इसका उदाहरण विमल कुमार टोप्पो की कहानी 'रक्तदान' के माध्यम से पता चलता है। जहां सिमोन नामक आदिवासी युवक है और ब्लड बैंक में काम करता है। उसने अफसर बाबू की मां की जान बचाने के लिए अपना खून दान करता है। यह वही अफसर बाबू है जिसके पास सिमोन अपना जाति प्रमाण पत्र बनाने के चक्कर में उसे यहां वहां दौड़ाता है लेकिन इसके विपरीत सिमोन का वाक्य इस प्रकार है- "हां मेरा भी ओ ग्रुप है। लोग तो अपने लिए जीते ही हैं सिस्टर, कभी दूसरों के लिए भी जी कर देखें। मेरे खून से एक जान बच जाएगी तो मेरी उम्र लंबी हो जाएगी।"[52] लेकिन उसी दिन सिमोन का एक्सीडेंट हो जाता है अफसर बाबू के भाई के मोटरसाइकिल के नीचे आकर और खून की कमी के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। इससे विदित होता है कि आदिवासियों में संवेदनशीलता, उदारता, मानवता जैसे गुण विद्यमान है।

निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि अन्य साहित्य की तरह ही आदिवासी साहित्य में भी कहानियों की प्रवृत्तियां देखी जा सकती है। यह सभी प्रवृत्तियां आदिवासी कहानियों में मुख्य रूप से विद्यमान है। बिना किसी प्रवृत्ति के कोई भी साहित्य नहीं लिखा जा सकता। इसमें कोई न कोई प्रवृत्तियां अवश्य होती है।

संदर्भ सूची

1.डॉ. बन्ने पंडित, हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श, पृ. संख्या, 13 प्रथम संस्करण 2014, अमन प्रकाशन कानपुर

2.जोशी लक्ष्मीशास्त्री, मराठी विश्वकोश, खंड- 2, पृ. संख्या 40

3.हकरा मासिक पत्रिका अंक 4 जुलाई-दिसंबर

4.डॉ. पिंगले भीमराव एच.ए जमादार आदिवासी एवं उपेक्षित जान पृ. संख्या 43

5.कुवर भाई दास गौतम, आदिवासी लोक साहित्य, प्रथम संस्करण 2012, पृ. संख्या 28

6.माइनॉरिटी राइट्स ग्रुप इंटरनेशनल, अल्पसंख्यकों और सर्वदेशीय लोगों की विश्व निर्देशिका-भारत, आदिवासी 2008

7.दासगुप्ता एस, आदिवासी स्टडीज फ्रॉम ए हिस्टोरियन्स पर्सपेक्टिवय हिस्ट्री कम्पासय 2018

8.ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी lX, 1933 पृ. संख्या 339

9.पाथी जगन्नाथ, जनजाति क्या है? देशज क्या है? तपन बोस देशज कौन है? आदिवासी कौन? द अदर मीडिया नई, दिल्ली पृ. संख्या 12

10.पांडेय अनिल कुमार, मध्य एशिया और आर्य समस्या, बोधन पत्रिका अप्रैल 2004, पृ. संख्या 50

11.उप्रेति हरिश्चंद्र, भारतीय जनजातियां संरचना और विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ, अकादमी जयपुर प्रथम संस्करण 2002, पृ. संख्या 02

12.शास्त्री भारद्वाज शिव प्रसाद, मानक हिंदी शब्दकोश, पृ. संख्या 72

13.त्रिपाठी कमलापति हिंदी विश्वकोश, पहला खंड पृ. संख्या 370

14.शास्त्री महादेव जोशी भारतीय संस्कृति कोश, पहला खंड पृ. संख्या 428

15.नागेंद्र मानविकी पारिभाषिक कोश साहित्य, पृ. संख्या 232

16.नवलजी श्रीसागर, नालंदा विशाल शब्द, पृ. संख्या 1375

17.डॉ.नायडू पी आर, भारत के आदिवासी पृ. संख्या 02

18.डॉ. उप्रेति हरिश्चंद्र, भारतीय जनजातियां: संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ. संख्या 02

19.डॉ. एस के सैनी, राजस्थान के आदिवासी, यूनीक ट्रेडर्स, प्रथम संस्करण 2003, पृ. संख्या 08

20.पुतुल निर्मला, नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ. संख्या 23

21.डॉ. गुप्ता रमणिका, आदिवासी कौन, पृ. संख्या 36

22.दुबे श्यामचरण, आदिवासी भारत, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ. संख्या 03

23.वही, पृष्ठ संख्या 10-11

24.डॉ. पिंगले भीमराव ए. एच. जमादार, वनवासी और उपेक्षित जग पृ. संख्या 53

25.डॉ. नायडू पी.आर, भारत के आदिवासी, पृ. संख्या 02

26.डॉ. गारे गोविंद, आदिवासी आणि बदलते संदर्भ, पृ. संख्या 7-8

27.कृष्ण, विजय लखनपाल, सामाजिक मानवशास्त्र, विद्या विहार देहरादून, प्रथम संस्करण 1958, पृ. संख्या 226

28.डॉ. गारे गोविंद, महाराष्ट्र के आदिवासी जमाति, पृ. संख्या 02

29.डॉ. गारे गोविंद, महाराष्ट्र के आदिवासी जमाति, पृ. संख्या 01

30.कुमार दीक्षित, डॉ. ध्रुव, समाजशास्त्र अनुसूचित जनजाति, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी इंदौर, पृ. संख्या 03

31.डॉ. सोनी एस के, राजस्थान के आदिवासी, यूनिक ट्रेडर्स, पृ. संख्या 09

32.डा. उप्रेती हरिश्चंद्र, भारतीय जनजातियां संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर, पृ. संख्या 01

33.प्रो.त्रिपाठी मधुसूदन, भारत के आदिवासी, पृ. संख्या 01

34.संविधान सभा की बहसें, खंड-1, पृ. संख्या 145

35.संविधान सभा की बहसें, खंड- IX, 5 सितंबर 1949, पृ. संख्या 994

36.संविधान सभा की बहसें, खंड- IX, 5 सितंबर 1949, पृ. संख्या 956

37.बेनेडिक्ट किंग्सबरी, इंडिजिनस पीपुल्स इन इंटरनेशनल लॉ: कंस्ट्रक्टिविस्ट अप्रोच टू द एशियन कंट्रोवर्सी 1998, पृ. संख्या 418

38.कोबो मार्टिनेज आर जोस का अध्ययन 'स्वदेशी आबादी के खिलाफ भेदभाव की समस्या', द स्टेट ऑफ द वर्ल्डस इंडिजिनस पीपुल्स में उद्धरित खंड-1

39.गुप्ता दास, संयुक्त (2019) द्वारा उद्धृत पृ. संख्या 112

40.माइकल ए.पीटर्स और कार्ल टी. मीका(2017) एबोरिजिन, इंडिजिनस और फर्स्ट नेशन?, एजुकेशनल फिलॉसफी एंड थ्योरी

41.थंडी जकारियास पी.1981, एबोरिजिनल ग्रुप इन इंडिया, कल्चर सर्वाइवल त्रैमासिक पत्रिका

42.प्रोफेसर टी.सी. जेम्स भारत में मूलनिवासी होने का आशय तथा अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ, पृ. संख्या 32

43.मीणा गंगा सहाय, आदिवासी चिंतन की भूमिका, प्रथम संस्करण 2017, अन्य प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. संख्या 74-75

44.भेंगरा वोल्टर, 'जंगल की ललकार' कहानी, पृ. संख्या 9-10

45.गुप्ता रमणिका, आदिवासी कहानी संचयन, साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण 2019, पृ. संख्या 277

46.केरकेट्टा रोज, जोरी-जोरी रे घाटो, प्रभात प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2023, पृ. संख्या 7

47.वही, 'छोटी बहू' कहानी पृ. संख्या 48

48.गुप्ता रमणिका, 'धरती का सच' कहानी, आदिवासी कहानी संचयन, साहित्य अकादेमी, प्रथम संस्करण 2019, पृ. संख्या 189-190

49.गुप्ता रमणिका, 'नया लूगड़ा' कहानी, आदिवासी कहानी संचयन, साहित्य अकादेमी, प्रथम संस्करण 2019, पृ. संख्या 332

50.मुंडा रामदयाल, लोकप्रिय आदिवासी कहानी, 'खरगोश का कष्ट' कहानी, पृ. संख्या 22

51.गुप्ता रमणिका, आदिवासी कहानी संचयन, साहित्य अकादेमी, प्रथम संस्करण 2019, 'धाड़' कहानी, पृ. संख्या 273

52.गुप्ता रमणिका, आदिवासी कहानी संचयन, साहित्य अकादेमी, प्रथम संस्करण 2019 पृ. संख्या 162

रोज केरकेट्टा की कहानियों में आदिवासी स्त्री संघर्ष

आदिवासी समाज में स्त्री पुरूष में सामानता दिखाई देता है। आदिवासियों में पितृत्तात्मक समाज विद्यमान है। स्त्रियां सभी प्रकार के कार्य करती हैं। खेत-खलियान हो, घर परिवार हो या जंगलों से लड़कियां लाना हो। वे अपने पति की भी शिकार में सहायता प्रदान करती है। आदिवासी समाज में स्त्रियां स्वतंत्र रूप से अपना जीवन बिताते है। औपनिवेशिक शासन के दौरान आदिवासियों की भूमि अधिग्रहण आरंभ हुई। जिसके कारण आदिवासी समाज में स्त्रियों का संघर्ष अधिक बढ़ा है। स्त्रियों को शासक वर्ग द्वारा शोषण का शिकार होना पड़ा है। आजादी के पश्चात मुख्यधारा समाज द्वारा भी उनका शोषण दिखाई देता है। जाति के आधार पर भी भेदभाव का सामना करना पड़ता है। पितृसत्तात्मक विचारधारा मुख्यधारा समाज में विद्यमान होने के कारण स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा गया था। वह स्वेच्छा से अपना जीवन नहीं जी सकती थी। उसे पुरुष के अधीन ही रहना पड़ता था। यह मानसिकता आदिवासी समाज में भी इसका प्रभाव देता है जिसके कारण स्त्रियों को संघर्ष करना पड़ रहा है। आदिवासी समाज में स्त्रियों को शिक्षित करना अच्छा नहीं समझा जाता था, क्योंकि उनके विवाह में बाधा उत्पन्न हो सकती है। समय के साथ आदिवासी समाज में यह विचारधारा धीरे-धीरे कम होती गई। वर्तमान में आदिवासी स्त्रियां संघर्षों के साथ शिक्षा ग्रहण कर रही है। रोज केरकेट्टा की कहानियों में इन्हीं संघर्षों पर प्रकाश डाला गया है।

2.1 पितृसत्तात्मक समाज का विरोध करने वाली स्त्री

समाज में पितृसत्तात्मक का वर्चस्व रहा है। आदिम साम्यवाद के पतन के पश्चात सामाजिक वर्ग का उदय हुआ। वहीं से पितृसत्तात्मक समाज की उत्पत्ति मानी जा सकती है और स्त्रियों की उत्पीड़न की शुरुआत होती है। आदिम समाज में मातृ प्रधान समाज था जहां स्त्रियों का प्रभुत्व था किंतु सभ्यता के उदय के साथ मातृ प्रधान समाज समाप्त हो गई और पितृसत्तात्मक समाज स्थापित किया गया। यहां

स्त्रियां चार दीवारों के बीच ही सीमित रह गई। एंगेल्स इस संदर्भ में कहते हैं- "मातृ अधिकार को उखाड़ फेंकना स्त्रियों की विश्वव्यापी ऐतिहासिक पराजय थी। घर में भी आदमी ने नियंत्रण संभाल, महिला को नीचा दर्जा दे दिया गया और उसे गुलाम बना दिया गया, वह पुरुष की वासना का गुलाम और बच्चे पैदा करने की मशीन मात्र बन गई।"[1]

स्त्रियों को सदियों से उत्पीड़न का सामना करना पड़ रहा है। वर्तमान में भी पितृसत्तात्मक सोच पुरुषों में घर कर बैठा है। इस विचार के कारण वे स्त्रियों के अस्तित्व, अस्मिता के प्रश्न को स्वीकार नहीं कर पाते तथा अपने नियंत्रण में ही रखने की कोशिश करते हैं। आज भी स्त्रियां पूरी तरह अपने आप को इससे मुक्त नहीं कर पाई है। उसी प्रकार आदिवासी समाज में भी पितृसत्तात्मक समाज विद्यमान है। औद्योगीकरण के पूर्व यदि देखा जाए तो पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियां स्वेच्छाचारी से अपना कार्य करती थी। इसके संदर्भ में रामदयाल मुंडा ने लिखा है- "यहां स्त्रियां अपने व्यवहार में अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र है और जीवन के अधिकांश क्षेत्रों में पुरुष के साथ उनके सामान सहभागिता दिखाई देती है।"[2] किंतु कालांतर में देखते हैं, आदिवासी समाज का संपर्क गैर आदिवासी समाज के साथ होने के कारण पितृसत्तात्मक सोच पर इसका प्रभाव स्वाभाविक है।

रोज केरकेट्टा ने 'केराबांझी' इस कहानी में पितृसत्तात्मक सोच पर प्रहार करती है। इस कहानी में कालीचरण के पाँच बेटे हैं इसलिए उसे अपने मर्दानगी पर गर्व है और वह अपने बेटों से भी वही उम्मीद करता है कि उसके बेटे भी उसके नक्शे कदम पर चले। कालीचरण का सबसे बड़ा बेटा लालधन अपने पिता के नक्शे कदम पर चलता है और उसके चार पुत्र हुए किंतु कालीचरण का मझला बेटा बालधन उनकी पत्नी हीरामती के साथ तय करते हैं कि उनका एक ही बेटा या बेटी होगी किंतु जब कालीचरण को यह खबर पता चलती है तो वह इस बात से ना खुश होता है। कालीचरण का वाक्य इस प्रकार है- "ई बालधनवा को देखो। एके गो बेटी जन्मा के तरना चल रहा है। अरे कोटी-कुकुर से करता होगा? कनियो ओइसने लाया है। अरे बहुवा, पूरा समाज जात-गोतिया तुम्हें नाम धरेगा। केराबांझी कहेगा रें! हाँ केराबांझी कहेगा। बालधनवा के कहे में मत चलना। बालधनवा और

मनबोधवा तो कुलबोरन है कुलबोरन।"[3] इससे स्पष्ट होता है कि स्त्री अपने विवाहित जीवन में भी स्वतंत्र रूप से अपने फैसले लेने के लिए सक्षम नहीं समझी जाती है। समाज में यह धारणा भी विद्यमान है कि यदि किसी विवाहित जोड़े का एक ही पुत्र या पुत्री हो तो उस पर लांछन लगाया जाता है। उसके स्त्रीत्व पर सवाल उठाया जाता है किंतु समाज में पुरुषवादी मानसिकता का प्रतिरोध को हिरामती के माध्यम से देख सकते हैं वह इस प्रकार है वह अपने ससुर के समक्ष खड़े होकर कहती है- "आप मुझे केराबांझी कह सकते हैं। क्योंकि हमने, हां हम पति-पत्नी ने मिलकर इसे स्वीकार है।...केला का एक कांधी लगता है, उसमें डेढ़-सौ, दो-सौ फल लगते हैं। उसी से चरणामृत बनता है। उसी से व्रती व्रत तोड़ता है, भूखा पेट भरता है। न उसमें कीड़े लगते हैं, न वह सड़ता है... मैं तेरा भाजी ही रहूंगी चाहे कोई कुछ भी कह ले।"[4] इस प्रकार देखते है कि हिरामती अपनी सोच, बूढ़ी के साथ अपने फैसले में दृढ़ रहती है और पितृसत्तात्मक सोच का विरोध करती है। इसी के साथ दो पीढ़ियों के बीच का अंतर को भी उजागर करती है। बदलते परिवेश के साथ दाम्पत्य जीवन में फैमिली प्लैनिंग का अधिकार निजी है और किसी के कहने से या समाज में मर्दानगी को दर्शाने के लिए नहीं होनी चाहिए।

'भंवर' इस कहानी में भी पितृसत्तात्मक विचारधारा नजर आती है। इस कहानी में विधवा स्त्री है और उसकी दो बेटियां है। समाज में विधवा स्त्रियों को कुछ हद तक सम्पत्ति अधिकार था। '14 अप्रैल 1937 ई. को हिन्दू स्त्रियों की सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम पारित हुआ। किंतु कानून से सामाजिक व्यवस्था बंदी नहीं है तथा सामाजिक व्यवस्था भी उन्हीं के लिए है जिनके पास बाहुबल है।' इससे यह ज्ञात होता है कि जब विधवा महिला अपने अधिकारों के लिए सजक हुई और उसकी मांग करने लगी तो पितृसत्तात्मक समाज इसे सहन नहीं कर पाया और दोनों मां बेटी के साथ भद्र व्यवहार किया गया। इसका उदाहरण इस प्रकार है- "पंद्रह-बीस मिनट के बाद एका-एक मालकिन के दरवाजे पर लात पड़ने लगी। बड़े-बड़े पत्थरों और कुल्हाड़ी से दरवाजा तोड़ा जाने लगा। मजबूत किवाड़ लगे थे। पर दरवाजा टूट ही गया। कपाटों के गिरने की देर थी, सारे वहशी इसी लोग दोनों मां बेटी पर टूट पड़े। सारी रात मां बेटी को गिद्धों की तरह नोचते रहे।"[5]

उपयुक्त उदाहरण से पता चलता है कि पितृसत्तात्मक समाज स्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित रखना चाहता है और दोनों मां बेटी पर अपने ही समाज के द्वारा उनका बलात्कार किया जाता है। ऐसे घिनौने विचार का शिकार दोनों मां बेटी को होना पड़ा। अपने अधिकारों की मांग के कारण उनका यह हश्र किया गया। बिटिया मुर्मू के अनुसार-"स्त्री और पुरुष की शारीरिक बनावट के आधार पर काम में बंटवारा समझ आ सकता है, लेकिन आदिवासी पुरुष समाज ने कार्य का बंटवारा शारीरिक बनावट या क्षमता के आधार पर ना करके, स्त्री पर अधिकार जताने के दृष्टिकोण से कड़े-कड़े नियम-कानून बनाकर उन्हें कुछ कामों से वर्जित कर दिया, जैसे हल चलाना, घर का छप्पर छाना या धनुष छुना अर्थात जमीन और घर जो आज की परिभाषा में सम्पत्ति के प्रतीक हैं, पर आदिवासी पुरुष समाज का ही अधिकार रहे।"[6]

इससे यह विदित होता है कि आदिवासी समाज में जहां लिंग भेद नहीं था अब उसे धीरे-धीरे माना जा रहा है और इसी के साथ पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था भी आदिवासी समाज में विद्यमान है। मुख्यधारा के समाज की देखा-देखी में आदिवासी समाज में भी स्त्रियों को पितृसत्तात्मक मानसिकता से गुजरना पड़ रहा है और उनके संघर्षों का सिलसिला बढ़ते ही जा रही है।

2.2 सवर्ण जाति द्वारा आदिवासी स्त्री की अवहेलना

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था को प्रधानता दी जाती है। भारत में जाति व्यवस्था को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। प्रथम दो जातियां सवर्ण कहलाए और अंतिम दो निम्न जाति के अंतर्गत आते हैं। जिन्हें उनकी अधिकारों से वंचित रखा गया। इसके अलावा अन्य एक समाज है जिन्हें पिछड़े वर्ग के रूप में देखा गया। समाज में उनके अधिकारों को दबाया गया वह है आदिवासी समुदाय। वर्तमान में संविधान द्वारा अनुसूचित जनजाति तथा अनुसूचित जाति से संबोधित किया जाता है। इसके सम्बन्ध में वंदना टेटे का मानना है-"आदिवासी समाज में जाति व्यवस्था नहीं है, आदिवासी जाति नहीं है

बल्कि आदिवासी समुदाय है। अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति यह शब्द संविधान में आदिवासियों के लिए गढ़ दिया गया है इसलिए आदिवासियों को जाति से संबोधित किया जाने लगा किंतु यह चीजें सुधारनी चाहिए कि आदिवासी समुदाय है, जाति नहीं।"[7] इससे ज्ञात होता है कि आदिवासी समाज में जाति व्यवस्था विद्यमान नहीं है वे समुदायों में रहकर अपना जीवन जीते हैं और सामूहिकता ही उनकी प्रमुख विशेषता है।

आदिवासी स्त्रियां हमेशा से प्रताड़नाओं, अत्याचारों, शोषण को सहती आ रही है। इसका उदाहरण 'घाना लोहार का' इस कहानी के माध्यम से देख सकते हैं। इस कहानी में रोपनी नामक आदिवासी स्त्री है और जिसके साथ उसने संबंध बनाए वह सवर्ण जाति का है। जगत सिंह से हैं सवर्ण जाति का है। उसकी पत्नी और एक पुत्र है। उसकी पत्नी बीमार होने के कारण जब रोपनी उस घर में आयी तो किसी ने उसका विरोध नहीं किया। रोपनी और जगत सिंह से सोमारु का जन्म हुआ। लेकिन जब जगत सिंह के पुत्र चंद्रू की बहू रूकमइन आती तो उसने रोपनी को 'बाहरिया' कहकर संबोधित करने लगी। इसका उदाहरण इस प्रकार है_ "छोटी जात वाले हम बड़े जात वालों के सामने बैठना-उठाना नहीं जानते बिहउवा का अलग ही मान रहता है। रखैल की कोई कीमत नहीं होती।...बिहउता के बेटे को ही जायदाद मिलनी चाहिए। बाहरिया के बेटे को संपत्ति किस कानून के मार्फत मिलेगी?"[8]

यहाँ देखते हैं आदिवासियों को सवर्ण जाति के द्वारा सिर्फ उनके श्रम को ही लिया जाता है लेकिन जब बात अधिकारों की आती है तो बाहरी-भीतरी का सवाल खड़ा कर दिया जाता है। सवर्ण जाति का व्यक्ति आदिवासी स्त्रियों से संबंध तो बनता है किंतु वह उसे भारी समाज में स्वीकारता नहीं है। इससे तो यह साफ स्पष्ट होता है की मुख्य धारा का व्यक्ति स्त्रियों को केवल अपनी यौन इच्छाओं की पूर्ति के लिए संबंध बनाते हैं। इस कहानी में रोपनी को अपने अधिकारों से वंचित रखा जाता है। उसे पत्नी का दर्जा तक नहीं दिया जाता है। रोपनी यह सब सह लेती है लेकिन जब बात उसकी बेटे तथा उसके अधिकारों की आती है तो वह पंचायत बुलाती है इस उम्मीद से कि उसे न्याय मिलेगी किंतु पंचायत ने सोमारू को देश

निकाला की सजा सुना दी। रोपनी असहाय होकर जगत सिंह की और देखते हुए कहती है- "मैं बेटे की कसम खाकर कहती हूं मलिक, मैंने दिल से आपको अपना माना है।"[9]

इस वाक्य के अनुसार रोपनी जगत सिंह से यह अपेक्षा करती है कि वह उसका साथ देगा किंतु रोपनी का जो विश्वास था, उम्मीद थी वह सब टूट जाता है। वह वापस अपने समुदाय में लौट जाती है। वर्तमान में भी ऐसी घटनाएं प्रासंगिक है जहां पर गैर आदिवासी समाज का व्यक्ति आदिवासी समाज की स्त्रियों से संबंध रखते हैं उनसे शादी नहीं करते बल्कि उन्हें दूसरी पत्नी के रूप में रखते हैं और यह सामाजिक व्यवस्था के लिए निश्चित रूप से हानिकारक है। साथ ही स्त्रियों के सम्मान के हिसाब से भी ठीक नहीं है। जब से औद्योगीकरण का दौर शुरू हुआ है, तब से आदिवासी स्त्रियों का गैर आदिवासी समाज के साथ मिलना-जुलना शुरू हुआ तब से जाति व्यवस्था का खामियाजा आदिवासियों को भुगतना पड़ रहा है। अतः कहा जा सकता है कि जो सम्मान अपने समाज में रहकर मिलता है वह दूसरे गैर आदिवासी समाज में रहकर नहीं मिलता है।

रोपनी जगत सिंह को अपनी दुनिया मानती थी, किंतु जगत सिंह के मन में रोपनी के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी, न ही अपने बेटे के प्रति। जगत सिंह के व्यवहार के कारण रोपनी अपने बेटे के लिए तथा स्वयं के अधिकारों के लिए प्रतिरोध करती है। रोपनी जगत सिंह से से कहती है- "तुमने मुझे अच्छा सलूक किया है, मैं तुम्हें सात बोंगरी करके छोड़ेगी।"[10]

एक स्त्री अपने ऊपर होने वाले सभी अत्याचारों को बर्दाश्त कर सकती है चाहे समाज उसे बहिष्कृत कर दें या उसे बाहरिया कहे लेकिन जब बात उसकी संतान की हो तथा उसके अधिकारों की हो तो वह बर्दाश्त नहीं करती। वह अपने अधिकारों के लिए प्रतिरोध करती है। रोपनी स्वयं जगत सिंह को बलुवे से मार डालती है तथा स्वयं थाना जाकर थानेदार के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लेती है इससे पता चलता है कि आदिवासी स्त्री पग-पग पर संघर्ष करती है और साथ ही अपने आत्मसम्मान और स्वाभिमान के लिए भी खड़ी उतरती है।

आदिवासी स्त्रियों के साथ तथाकथित सवर्ण जातियों द्वारा क्रूर व्यवहार होता आ रहा है। इसका उदाहरण हमें भील आदिवासी समुदाय की स्त्री नंदाबाई के माध्यम से देख सकते है। नंदाबई को सवर्ण जाति के साथ संबंध बनाने के कारण उस पर लात-घूसों की बौछार की जाती है तथा कपड़े फाड़कर निर्वस्त्र करके पीटा जाता है। कहा जा सकता है मुख्यधारा का समाज जो अपने आप को सभ्य कहता है लेकिन इस प्रकार के हरकतों से लोगों की मानसिकता का बोध होता है तथा उनकी सोच कितनी संकोचित वह स्पष्ट होता है।

2.3 शिक्षा के लिए संघर्ष करने वाली स्त्री

भारत एक लोकतांत्रिक देश है। प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा व्यवस्था स्थापित की जा रही है। वास्तव में शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अहम भूमिका निभाती है। आदिवासी बहुल क्षेत्रों में भी शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो रहा है। शिक्षा प्रणाली के कारण ही आदिवासी समाज की स्त्रियां अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई तथा अपनी पहचान और अस्तित्व को बनाने के लिए संघर्षरत है। शिक्षा ही एकमात्र ऐसा औजार है जो स्त्रियों के शोषण, उत्पीड़न, प्रताड़नाओं से मुक्ति पाने का तथा उन तमाम षडयंत्रों के विरुद्ध भी सचेत करती है जो गैर आदिवासी समाज द्वारा बनाई गई है।

'संपूर्ण भारत में साक्षरता 74.37 प्रतिशत है। वर्तमान में महिला साक्षरता 65.46 प्रतिशत है। वहीं पुरुष साक्षरता 80% से अधिक है।'[11] इस आंकड़ों को देखते हुए कहा जा सकता है कि भारत में आज भी निरक्षर व्यक्तियां है तथा पुरुषों की संख्या स्त्रियों से अधिक है।

भारत में आधुनिक शिक्षा अंग्रेजों द्वारा आरंभ की गई। 1813 के चार्टर एक्ट के माध्यम से ही भारत में आधुनिक शिक्षा का औपचारिक पक्ष सामने लाया गया और शिक्षा के क्षेत्र में विकास के लिए अंग्रेजी सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान की गई। आधुनिक शिक्षा के लिए सरकारी तथा प्राइवेट स्कूलों का निर्माण किया गया। शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए मिशनरियों का भी योगदान रहा है। शैक्षणिक विकास के क्षेत्र में अनेक नीतियां बनाई गई जैसे कि चार्टर एक्ट 1813, मैकाले

मिनट्स 1835, लॉर्ड विलियम बैंटिक का संकल्प 1835, भारतीय शिक्षा आयोग 1882-83, भारतीय विश्वविद्यालय आयोग 1902, माध्यमिक शिक्षा के लिए सरकार का संकल्प 1904, राष्ट्रीय शिक्षा परिषद 1906 आदि नीतियां बनाई गई। फलस्वरूप औपनिवेशिक सरकार द्वारा आधुनिक शिक्षा की शुरुआत हुई तथा आजादी के पश्चात शिक्षा व्यवस्था में स्त्री शिक्षण तथा शिक्षक प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। जहां शिक्षा की तीन स्तर रखा गया प्राथमिक, मध्य एवं माध्यमिक। इसी आधार पर शिक्षा व्यवस्था का विकास होता गया।

आजादी से पूर्व भारतीय समाज में स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। किंतु 18 वीं शताब्दी में देखते हैं ऐसे अनेक समाज सुधारक हुए जिन्होंने समाज में पहले विसंगतियों को हटाने का प्रयास किया तथा स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन किया। एस सी राय इसके संदर्भ में कहते हैं- "भारत में 18वीं शताब्दी में शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए जनजातीय क्षेत्रों में मिशनरियों का आगमन हुआ। यहीं से आदिवासी समाज में भी शिक्षा का आरंभ हुआ फलस्वरूप स्त्रियों में जागरूकता आने लगी तथा समाज में पहले पर्दा प्रथा तथा सती प्रथा जैसे प्रथम का त्याग कर शिक्षा ग्रहण करने लगी इसी के साथ वे शिक्षा के महत्व को भी समझने लगी।"[12]

आदिवासी समाज के लिए पैसा महत्वपूर्ण नहीं नहीं था किंतु औद्योगिकारण तथा बाजारवाद के खुलने के साथ ही आदिवासियों में भी पैसों की लेन-देन शुरू हो गई और तब से वह शहरों की ओर पलायन करने लगे। आदिवासी जो अपने जल, जंगल, जमीन के सहारे ही अपना जीवन बिताते आए वह शहरों की ओर मुड़ रहे हैं। आज संपूर्ण विश्व मूल्य केंद्रित हो गया है। जिसके कारण कई आदिवासी समुदाय हैं अपने आर्थिक आवभाव के कारण ही शिक्षा को बीच में छोड़ते है। वर्तमान में देखा जा सकता है कि आदिवासी समाज में शिक्षा व्यवस्था विद्यमान है। आदिवासी ग्रामीण इलाकों में अपना गुजर बसर करते हैं। अत्यधिक आदिवासी खेती बाड़ी से ही अपना रोजमर्रा का जीवन बिताते हैं। आदिवासी क्षेत्रों में ऐसे अनेक स्कूल खोले तो जा रहे हैं किंतु आदिवासी समाज में शिक्षकों की नियुक्ति

में अभाव रहा है। ऐसे भी आदिवासी क्षेत्र हैं जहां शिक्षा पहुंचने में व्यवस्था सक्षम नहीं हुई है और आज भी आदिवासी लोगों में स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी मूलभूत सेवाओं के अभाव में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आशीष भट्ट आदिवासियों के शिक्षा और स्वास्थ्य के संबंध में कहते हैं- "दूरस्थ जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की आपूर्ति करने में शासन तंत्र असफल रहा है। वहीं शिक्षा के क्षेत्र में अधोसंरचनात्मक सुविधा तो शासन द्वारा प्रदान की गई परंतु दी जा रही शिक्षा के कारण जागरूकता का स्तर नहीं बढ़ रहा है।"[13]

आदिवासी बहुल क्षेत्र में स्त्रियों को अपने परिवारों द्वारा शिक्षा प्रदान कराई जा रही है। शिक्षा के क्षेत्र में सक्रियता दिखाई दे रही है। स्वयं लेखिका अपनी कहानियों के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि आदिवासी महिलाएं शिक्षित हो रही हैं और उसके लिए संघर्ष भी कर रही है। 'पगहा जोरी जोरी रे घाटो' इस कहानी में दया नामक आदिवासी लड़की है, जो शिक्षा के लिए संघर्ष करती है। दया मवेशियों को चराते वक्त स्कूल के खिड़की से बाहर ब्लैकबोर्ड के सामने खड़े होकर मास्टर जी को पढ़ाते हुए देखती है। दया ने अपनी मां से कहा- "मैं भी पढ़ूंगी।" इस वाक्य से दया की शिक्षा ग्रहण करने की उत्कृष्ट इच्छा प्रकट होती है किंतु उसकी माँ का कहना था। वह इस प्रकार है-"पढ़के क्या करोगी। विवाह होगा तो ससुराल में भी चूल्ह फूंकोगी। काम सीखो बेटी। सिखलाही बहू को सास भी प्यार नहीं करती है। सास को कमनी बहू चाहिए। पागल मत बनो।"[14] दया की माँ के इस वाक्य से समाज में फैली मानसिकता का पता चलता है। इस प्रकार की दोहरी मानसिकता के कारण स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिक संघर्ष करना पड़ता है। लेकिन दया के सीखने की जिद उसके जीवन में नई-नई चीजों को सीखने की जिज्ञासा को भी दर्शाता है। इस कहानी के माध्यम से आदिवासी समाज में शिक्षा के महत्व को रेखांकित किया गया है। जब वे शिक्षा प्राप्त करेंगे तभी आदिवासी स्त्रियां अपनी संस्कृति, जीवन दर्शन तथा अपने मूलभूत अधिकारों के लिए प्रतिरोध की भावना उनमें जागेगी और समाज में विशिष्ट पहचान बनाने में सक्षम हो पाएंगे।

इसका दूसरा उदाहरण है- 'से महुआ गिरे सागर राति'। इस कहानी में जोसेफा नामक आदिवासी स्त्री है, जो शिक्षा प्राप्त करने के लिए रेंगारी से पहाड़ों तथा जंगलों को पार करके पैदल वह सिमडेगा आती है और दूसरे दिन रांची पढ़ने के लिए जाती है। ऐसा ही संघर्ष 'जिद' कहानी में भी देखा जा सकता है। इस कहानी में कोलेंग नाम की स्त्री है जिसकी जिद है कि शिक्षा प्राप्त करके शिक्षा के क्षेत्र में अपना योगदान देना चाहती है। आदिवासियों के गांव जंगलों, पहाड़ों से घिरे होने के कारण उन्हें काफी मशक्कत करनी पड़ती है। कोलेंग का गांव भी पहाड़ी के ऊपर बसा है और शिक्षा के लिए सात किलोमीटर पैदल चलकर स्कूल पहुंचती है। इस प्रकार आदिवासी स्त्रियों का शिक्षा के प्रति संघर्ष को देखा जा सकता है। यातायात की सुविधा न होते हुए भी कोलेंग उच्च शिक्षा प्राप्त करती है। वह हर कदम पर संघर्ष करते हुए आगे बढ़ती जाती है।

उपर्युक्त तीनों कहानियों में आदिवासी स्त्रियां शिक्षा के लिए संघर्षरत है। दुर्गम इलाकों में रहने के बावजूद देखा जा सकता है कि आदिवासी स्त्रियां शिक्षा के प्रति सजक हैं और यही संघर्ष उनके जीवन में उज्जवल भविष्य का निर्माण करने में सहायता प्रदान करना है।

2.4 स्त्री सशक्तिकरण का चित्रण

विश्व भर में स्त्री सशक्तिकरण की अवधारणा पर विचार विमर्श हो रहा है। स्त्री सशक्तिकरण से तात्पर्य है स्त्रियों को पितृसत्तात्मक समाज द्वारा उन्हें असहाय, कमजोर तथा उन तमाम उत्पीड़नों, मानसिक तथा शारीरिक शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद करना और अपने अधिकारों के प्रति सजक होकर समाज में स्वतंत्र रूप से पुरुषों के समक्ष समानता पूर्वक जीवन व्यतीत करना है।

स्त्रियों को सदियों से पुरुषों से कमतर ही आंका गया है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियां मां, बहन, पत्नी के रूप में ही देखी गई। उसे कभी पुरुषों के समानांतर नहीं देखा गया। किंतु वैदिक काल में देखते हैं कि स्त्रियां पुरुषों से के समान ही शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। वे सामाजिक नीतियों में अपना विचार व्यक्त कर सकती थी।

इसका उदाहरण मैत्रयी, गार्गी व लीलावती जैसी कलावती या प्राज्ञी नारी देखने को मिलती है। किंतु उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई। मध्यकाल में आते-आते स्त्रियों को शोषण, यौन उत्पीड़न के साथ ही पुरुषों की मानसिकता बन गई की स्त्रियों को गृहणी के रूप में ही रहना चाहिए। परिणाम स्वरुप समाज में विकृत स्थितियां उत्पन्न हुई जैसे सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, जौहर आदि प्रथाएं प्रचलित हुई। स्त्रियों को पुरुषों द्वारा सदैव निम्न स्तरीय दर्जा प्रदान किया गया। इन सभी स्थितियों के कारण समाज में स्त्रियों को पुरुषों पर आश्रित होना पड़ा है। इस संदर्भ में मनु कहते हैं- "हिंदू महिला जीवन भर पुरुष पर आश्रित रहती है बचपन में पिता पर विवाहोपरांत पति पर तथा वृद्धावस्था में पुत्र पर। इसमें से एक भी अवस्था में पुरुष का आश्रय न रहने पर उसे कलंकित व उपेक्षित किया गया तथा अपमान व तिरस्कार की ज्वाला में उसके जीवन को भस्म कर दिया गया।"[15] इससे ज्ञात होता है कि समाज में स्त्रियों को पुरुष के अधीन रखने की षड्यंत्र सदियों से विद्यमान है तथा इसे यह विचार सामने आता है कि स्त्रियां पुरुषसत्तात्मक समाज में उनका हनन होता आ रहा है और पुरुष अपने प्रभुत्व को हमेशा बरकरार रखना चाहते है। 19वीं शताब्दी में अंग्रेजों के आगमन के साथ स्त्रियों की स्थितियों में परिवर्तन आने लगा। इसी समय में अंग्रेजों द्वारा भारतीयों को शिक्षित करने के लिए अनेक नीतियां बनाई गई। भारतीय समाज में ऐसे अनेक समाज सुधारक तथा आंदोलनकारियों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने समाज में फैले कुरीतियों का विरोध किया और स्त्री शिक्षा में अहम भूमिका निभाई है। फिर भी यह देखा जा सकता है कि स्त्री और पुरुष में शिक्षा को लेकर भेदभाव दिखाई देता है। पुरुषों की शिक्षा को ही महत्वपूर्ण समझा जाता है इसका सबसे बड़ा कारण समाज में फैली दोहरी मानसिकता है। आजादी के पश्चात स्त्रियां शिक्षित हो रही है। अंग्रेजी शासन व्यवस्था ने भारतीय स्त्रियों के प्रति एक उज्जवल मार्ग प्रशस्त की जिसके कारण स्त्रियां शिक्षित हो पायी। समाज में स्त्री पुरुष में समानता लाने के लिए अनेक कानून लागू किए गए है। संयुक्त राष्ट्र संघ स्त्रियों के विकास में अहम भूमिका निभाता है।

स्त्रियां अब समाज में जागरूक हो रही है तथा अपनी सहभागिता को प्रस्तुत कर रही है। इसके संदर्भ में ए.आर. देसाई ने अपने एक आलेख में कहा है- “भारतीय महिलाओं में नई संवेदना व चेतना का विकास हो रहा है जिससे अब उसे अधिक समय तक उन पारिवारिक, संस्थागत, राजनीतिक और सांस्कृतिक मानदंडों की घुटन में नहीं रहना पड़ेगा जिसके कारण उसकी स्थिति सदैव अपमानजनक रही है।”[16] इससे विदित होता है कि स्त्रियां अब सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक मानदंडों से विमुक्त होकर स्वेच्छा से अपने जीवन में आगे बढ़ रही है। वहीं दूसरी ओर आदिवासी समाज है जिन्हें पिछडे वर्ग में रखा गया है। भारतीय समाज में देखा गया है कि स्त्रियों का शिक्षित होना अच्छा नहीं माना जाता था किंतु वास्तव में इस मान्यता का खंडन करते हुए स्त्रियों में चेतना का स्वर दिखाई देता है। भारतीय संविधान में स्त्री सशक्तिकरण को लेकर अनेक योजनाएं बनाई गई जैसे कि पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन, काका कालेलकर आयोग, मंडल आयोग, राष्ट्रीय सामाजिक एवं शैक्षणिक पिछड़ा वर्ग आयोग, राष्ट्रीय जनजाति नीति, अनुसूचित जाति राष्ट्रीय आयोग आदि आदिवासी समुदायों में शिक्षा को प्रोत्साहन के लिए बनाया गया। आदिवासी स्त्री सशक्तिकरण योजना 2002-03 में शुरू की गई। इस योजना के तहत आदिवासी स्त्रियां जो अत्यंत गरीबी रेखा में जीवन व्यतीत करते हैं उन्हें अपना स्वतंत्र कार्य स्थापित करने के लिए चार प्रतिशत सालाना 50 हजार रुपयों का ब्याज ऋण प्रदान की गई है। इस प्रकार योजनाओं के माध्यम से स्त्रियों को सशक्त बनाने का प्रयास किया जाता है।

आदिवासी समुदायों में भी स्त्रियां उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हैं किंतु यह भी देखा जा सकता है कि आदिवासी समाज में पर्याप्त संसाधनों के अभाव के कारण स्त्रियों की शिक्षा अधूरी रह जाती है। ऐसी बहुत स्त्रियां होगी जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु शहरों में जाकर अपनी पढ़ाई पूरी करती है। आदिवासी स्त्रियों को देखा गया है कि स्त्रियां स्वयं कमाकर शिक्षा प्राप्त करने की क्षमता भी रखती है। आदिवासी स्त्रियां मुख्यधारा समाज की स्त्रियों जैसी ही शिक्षित होकर समाज में व्याप्त कुरीतियों, विसंगतियां तथा मुख्यधारा समाज द्वारा किए जा रहे शोषण, अत्याचारों

से रूबरू होकर वह अपनी पहचान बना रहे हैं। इसके संदर्भ में राजगोपाल कहते हैं- "धीरे-धीरे महिलाएं यह महसूस करने लगी है कि इंसान के रूप में उनका भी एक व्यक्तित्व है और उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य अच्छी पत्नी, मां आदि से ही पूर्ण नहीं हो जाता है बल्कि वह यह मानती हैं कि वह नागरिक समुदाय और समाज की एक सदस्य हैं।"[17] स्त्रियां अबला नहीं है। वे संपूर्ण समाज को विकास की रास्तों पर अग्रसर करने की हिम्मत रखती है। रोज केरकेट्टा की कहानियों में भी स्त्री सशक्तिकरण के कई उदाहरण देखे जा सकते हैं तथा स्वयं स्त्री सशक्तिकरण को प्रोत्साहन करती हैं। उनकी कहानियों के माध्यम से आदिवासी स्त्रियों में चेतना लाने का प्रयास किया गया है। मुख्यधारा के समाज द्वारा सामाजिक स्तर पर अधिकारों से वंचित रखे जाने की परंपरा के प्रति उन में जागरूकता लाकर उन्हें इन समस्याओं का प्रतिरोध करने के लिए प्रेरित करती है।

'प्रतिरोध' इस कहानी में आदिवासी लड़कियां शहरों में दातून-पत्तल, दोना-पत्तल लेकर शहरों में जाती है। वे शहरों में लड़कियों को फुटबॉल खेलती देख स्वयं भी फुटबॉल खरीदती है और खेलना शुरू कर देती है। इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने यह बताने का प्रयास किया है कि स्त्रियां अपने आप को पुरुषों से कम नहीं समझती है। उन्हें पूरा विश्वास है कि वे फुटबॉल जैसे खेल-खेल सकती हैं। सुशीला के पिता का यह कथन इस मायने में महत्वपूर्ण बन जाता है वह इस प्रकार है- "हम लोगों ने भी ध्यान नहीं दिया, जमाना बदल गया, हमें अपना व्यवहार बदलना पड़ेगा। यह लोग शहर जाती हैं, प्रतिदिन देखती है की लड़कियां पढ़ती है, पढ़ती है। शहर से कुछ अच्छा सीख कर आती है तो अच्छी बात है, हमारा गांव आगे बढ़ेगा।"[18] इससे यह ज्ञात होता है कि आदिवासी समाज में एक तो स्त्रियों की इच्छाओं को प्रोत्साहन दिया जाता है तथा समय के साथ समाज में जो परिवर्तन आ रहे हैं उन्हें भी स्वीकारने की क्षमता रखते हैं किंतु अपने संस्कार, संस्कृति, मान्यताओं के साथ। आदिवासी समाज में स्त्रियों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा भी प्रदान करती है और यह भी एक प्रकार के से स्त्री सशक्तिकरण का ही अंग हम कह सकते हैं। यदि मुख्यधारा की बात की जाए तो स्त्रियों शिक्षा से वंचित थी उन्हें

अनेक प्रथाओं का सामना करना पड़ा किंतु इसके विपरीत आदिवासी समाज है जहां पर स्त्री पुरुष में समानता दिखाई देता है।

स्त्री सशक्तिकरण का दूसरा उदाहरण है 'गंध' इस कहानी के द्वारा देखी जा सकती है। इस कहानी में जोसना नामक आदिवासी स्त्री है जो आम पैसेंजरों के तरह ही बस में बैठी है। थोड़ी देर बाद सात युवक बस में आए। बीस मिनट बाद झाड़ियों की ओट से सात युवतियां बाहर आई। फिर वह बस में एक-एक कर चढ़ने लगी और दूसरी जो सबसे छोटी लड़की थी जैसे ही चढ़कर पैर लांघने लगी, आदमी ने कहा- "रे छोंड़ी जवान हुई है कि नहीं?" स्त्रियों को समय-समय पर लगातार ऐसी छेड़खानियां झेलना पड़ता है। लेकिन जोसना के माध्यम से कहानीकार ने आदिवासी सशक्तिकरण को इस प्रकार दर्शाया है- तभी जोसना चिखते हुए बोली - 'हटाइए अपना पैर!' आदमी बोला- 'आपका क्या जा रहा है?' जोसना- 'हां जा रहा है।' आदमी बोला- 'करंज तेल, करंज तेल बसाती है।' जोसना ने बैग कंधे पर ठीक से लटकाया। दाएं हाथ की मुट्ठी बांधी। बाएं हाथ से आदमी के सिर के बाल पकड़े और तीन मुक्का जड़ती तब तक ड्राइवर ने बस स्टार्ट कर दिया।'[19] यहां जोसना को आधुनिक स्त्री के रूप में दर्शाया गया है। उसके माध्यम से स्त्री का वह पक्ष को उजागर करती है कि स्त्रियां कमजोर नहीं है। वह स्वयं की आत्मरक्षा तथा अपने स्वाभिमान के प्रति आवाज उठा सकती है। वह चुपचाप अन्याय को सहने वाली नहीं है बल्कि उसके विरुद्ध में प्रतिरोध करने का जज्बा भी रखती है।

'बड़ा आदमी'। इस कहानी में हीरा नामक आदिवासी स्त्री के माध्यम से स्त्री सशक्तिकरण को अभिव्यक्त किया गया है। हीरा अपने पति के साथ काम करने के लिए पंजाब जाती है। वहां पर सवर्ण जाति का व्यक्ति अमरीक सिंह तथा उसके बेटों द्वारा उसका बलात्कार किया जाता है। जब वह अपने गांव वापस लौटती है और सहेलियां द्वारा पूछने पर हीरा तिलमिलाकर कहती है- "मैं उनके पास जाती थी क्या? वे लोग मेरे पास आते थे, मेरा पति जेठू तो आदमी ही नहीं था। इन भांडुवों के लिए मैं क्यों जान दूं?"[20] यह वाक्य अवगत कराता है कि आदिवासी

समाज की स्त्रियां यह जानती है कि बलात्कार जैसी घिनौनी हरकतों की जिम्मेदार वह नहीं है। वह जानती है कि उसका कोई दोष नहीं है। यही सकारात्मक विचार ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण बन जाता है। जीवनयापन करने के लिए तथा समाज में दोबारा सामान्य जीवन जीने में सहायक बनती है। दूसरी ओर मुख्यधारा समाज में देखे तो जिन स्त्रियों के साथ ऐसी घटनाएं घटित होती है वह अपने आप में ही सिमट कर रह जाती है। समाज के भय के कारण आत्महत्या जैसे कदम उठा लेती हैं। रमणिका गुप्ता अपनी पुस्तक 'स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास' में लिखती है- "बलात्कार होने से स्त्री खुद को अपवित्र मानकर मर जाना चाहने लगती है जबकि यह पुरुष की अनाधिकार चेष्टा व जोर जुल्म और जबरदस्ती का मामला होता है। समाज इसे पुरुष की मर्दानगी कहकर टाल देता है पर स्त्री के मन में सदा के लिए अपवित्रता का अपराध बोध भर देता है जबकि स्त्री की उसमें कोई हिस्सेदारी नहीं होती है।"[21]

ऐसी घटनाएं स्त्रियों को अंदर से झकझोर कर रख देती है और स्त्रियों को ऐसी स्थिति में परिवार तथा समाज द्वारा यह एहसास दिलाया जाना चाहिए कि इसमें उसकी कोई गलती नहीं है। इसी के विपरीत आदिवासी स्त्री है जहां आदिवासी समुदाय में इस प्रकार की घटना होती है तो उसे समाज में अपनाया जाता है। जीवन जीने के लिए उत्तेजित करते हैं। इस संदर्भ में आदिवासी लेखिका वंदना टेटे कहती है- "स्त्री सशक्तिकरण का यह सशक्त प्रयास नहीं है बल्कि सहज प्रयास है। आदिवासी महिलाएं कमजोर नहीं होती ना ही आदिवासी समाज उनको कमजोर बनाता है। कमजोर वह लोग होते हैं जो महिलाओं को इसका दोष देते हैं। आदिवासी समाज बलात्कारी को दोषी मानता है इससे पता लगता है कि आदिवासी समाज कितना समझदार, जिवट है। सामाजिक रूप से तथा बौद्धिक रूप से कई मायनों में बहुत आगे हैं।"[22]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है की आदिवासी स्त्रियों की संघर्ष और मुख्यधारा की स्त्रियों के संघर्ष में हमें भिन्नता नजर आती है। आदिवासी समाज में स्त्री

सशक्तिकरण को लेकर जागरूकता विद्यमान है तथा आदिवासियों को सशक्त बनाने में आदिवासी साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। स्त्रियां अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रही हैं तथा स्वयं स्वावलंबी बन रही है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, विषमताओं से मुक्त होकर अपने अस्मिता और अस्तित्व के निर्माण में संघर्षरत है।

संदर्भ सूची

1.एंगेल्स फ्रेडरिक, परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति, प्रथम संस्करण 1884, प्रगति प्रकाशन मास्को

2.आदिवासी साहित्य अक्टूबर 2015 मार्च 2016, वर्ष 2, अंक 45, पृ. संख्या 41

3.केरकेट्टा रोज, ‘पगहा जोरी-जोरी रे घाटो’, ‘केराबांझी’ कहानी, पृ. संख्या 32

4.केरकेट्टा रोज, ‘पगहा जोरी जोरी रे घाटो’, ‘केराबांझी’ कहानी, पृ. संख्या 35-34

5.केरकेट्टा रोज, ‘पगहा जोरी-जोरी रे घाटो’, ‘भंवर’ कहानी पृ. संख्या 19

6.डॉ. पटेल के. उत्पल, अनुसूचित जनजाति एवं उनकी आकांक्षाएं पृ. संख्या 100-101

7.स्वयं द्वारा लिया गया साक्षात्कार

8.केरकेट्टा रोज, पगहा जोरी-जोरी रे घाटो, ‘घाना लोहार का’ कहानी, पृ. संख्या 24

9.केरकेट्टा रोज, पगहा जोरी-जोरी रे घाटो, ‘घाना लोहार का’ कहानी, पृ. संख्या 27

10.केरकेट्टा रोज, पगहा जोरी-जोरी रे घाटो, ‘घाना लोहार का’ कहानी, पृ. संख्या 28

11. 2011 के जनगणना के अनुसार

12.ठाकुर वंदना, शिक्षा और आदिवासी समाज, प्रथम संस्करण 2020, नित्य प्रकाशन, भोपाल मध्य प्रदेशम.प्र भारत पृष्ठ, पृ. संख्या 149

13.चौधरी एस.एन, मिश्रा मनीष, आदिवासी विकास उपलब्धियां एवं चुनौतियां भाग-1 पृ. संख्या 17

14.केरकेट्टा रोज, ‘पगहा जोरी-जोरी रे घाटो’, पगहा जोरी जोरी रे घाटो’ कहानी पृ. संख्या 145 146

15.डॉ. भिसे मुंजाजी रामचंद्र, भारतीय समाज एवं महिला सशक्तिकरण, प्रथम संस्करण 2013, पृ. संख्या 74

16.डॉ. भिसे मुंजाजी रामचंद्र, भारतीय समाज एवं महिला सशक्तिकरण, प्रथम संस्करण 2013, पृ. संख्या-75

17.राजगोपाल टी. एस. इंडियन वूमेन इन दि न्यू एज, मैसूर 1936

18.केरकेट्टा रोज, बिरूवार गमछा तथा अन्य कहानियाँ, प्रथम संस्करण 2017, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 'प्रतिरोध' कहानी पृ. संख्या 34

19.केरकेट्टा रोज, पगहा जोरी-जोरी रे घाटो, 'गंध' कहानी पृ. संख्या 54

20.केरकेट्टा रोज, बिरूवार गमछा तथा अन्य कहानियाँ, 'बड़ा आदमी' कहानी पृ. संख्या 94

21.गुप्ता रमणिका, स्त्री मुक्ति, संघर्ष और इतिहास, दुसरा संस्करण 2014, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली

22.स्वयं द्वारा लिया गया साक्षात्कार

रोज केरकेट्टा की कहानियों में चित्रित समस्याएं

समाज में समस्याएं तभी उत्पन्न होती है जब किसी समुदाय, राष्ट्रीय, संगठनों में एकमत दिखाई नहीं देता। एक समाज दूसरे समाज का दमन करता है। एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के विचारों से सामंजस्य नहीं रखता है। तो समाज में अनेक समस्याएं उद्वेलित होती है। मानव इन समस्याओं के बीच झुलसता रहता है। अतः कहा जा सकता है कि प्रत्येक समाज में समस्याएं विद्यमान है।

आदिवासी समाज अनेक समस्याओं का सामना करते आ रहा है। आजादी पूर्व देखते हैं मुगल शासन काल के दौरान आदिवासियों को अपने 'पारंपरिक व्यवस्था' से खारिज कर दिया गया और 'व्यक्तिगत संपत्ति' पर बल दिया गया। यही बात आदिवासियों पर कर भी लागू की गई। जब अंग्रेज आए तो उन्होंने आदिवासियों के लिए अनेक कानून बनाएं जिसके कारण उन्हें उनकी सामूहिक संपत्ति से वंचित कर दिया गया। प्रतिवर्ष अंग्रेजों द्वारा अधिक कर लिया जाने लगा परिणाम स्वरूप उनकी स्थिति दयनीय होती गई। जिन भूमि का अधिग्रहण अंग्रेजों द्वारा किया गया वह जमींदारों तथा महाजनों के हाथों सौंप दी गई। जिसके वजह से लाखों आदिवासियों की जमीन जमींदारों के पास चले गए और वह भूमि के मालिक बन बैठे। आदिवासियों की भूमि पर कोई अधिकार नहीं रहा गया। ए.आर.देसाई आदिवासियों की समस्याओं पर अपना विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं- "जनजातियों की समस्याएं कृषि, मजदूर, कृषकों और कारीगरों की समस्याओं जैसी है। मजदूर, किसान या कारीगर जहां कहीं काम करते हैं, मालिक उनका शोषण करते हैं। बहुत सीधा-सदा सत्य यह है कि हमारी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग ऐसा है जो कृषि से जीविकोपार्जन करता है और जिसका शोषण विभिन्न तरीकों से साहूकारों, अनुपस्थित जमींदारों और बिचौलियों द्वारा होता है।"[1]

फलस्वरूप आदिवासियों में आक्रोश का उद्वेलन हुआ और समय-समय पर इसके विरोध में आंदोलन किए गए जैसे कि 1832 में हुई कोल विद्रोह, सरदारी लड़ाई, 1857 में बिरसा मुंडा के नेतृत्व में हुए विद्रोह ने जमींदारों, महाजनों के खिलाफ

अतिक्रमण आरंभ हुई। औपनिवेशिक सरकार द्वारा आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन की रक्षा के लिए अनेक काश्तकारी नियम बनाया गया जैसे 1908 छोटानागपुर टेनेंसी एक्ट, 1872 संथाल परगाना के लिए रेगुलेशन 111 के तहत जमींदारी व्यवस्था को खत्म की गई। कालान्तर में इन्हीं कानूनों में सक्ति से संशोधन किया गया और जिससे आदिवासियों का संघर्ष अधिक तीव्र हुई। 1978 में सिंहभूम में जंगल आंदोलन चलाया गया था। बिहार राज्य में 18 पुलिस गोलीकांड हुए। इस प्रकार आदिवासियों का सरकारी नीतियों के तहत दमन को देखा जा सकता है।

सरकार द्वारा विकास के नाम पर अनेक परियोजनाएं बनाई गई किंतु यह सिर्फ मुट्ठी भर लोगों को ही इसका लाभ प्राप्त हुआ है। संपूर्ण भारत में आदिवासी संघर्षरत है। भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के हितों के लिए कानून तो बनाया गया है किंतु उनकी स्थितियों में कोई सुधार नहीं दिखाई देता है। वर्तमान में ऐसे कई आदिवासी समुदाय हैं जो प्रतिदिन अपने अधिकारों की गुहार लगा रहे हैं किंतु उनकी मांगों को अनसुना कर दिया जाता है और सरकार द्वारा कई बहुराष्ट्रीय कंपनियों को खनन कार्यों के लिए आदिवासी बहुल क्षेत्र दी जाती है।

आदिवासियों की समस्याओं का निवारण करने में भारतीय शासन व्यवस्था नाकाम रही है। सरकार द्वारा जो नीतियां बनाई जाती है, वह उनके हितों में न होकर मुनाफा कमाने का जरिया बन गया है। आदिवासी जल, जंगल, जमीन, नदी, पहाड़ों पर जीवन भर निर्भर रहते हैं। वर्तमान में वह धन कमाने का स्रोत बन गया है। मुख्यधारा समाज छल-प्रपंच के माध्यम से उनसे उनकी संपत्ति ले ली जाती है। जिस समाज में बल की प्रभुत्व होती है वह सदैव अपना प्रभुत्व कमजोरों पर केंद्रित करता है। यही बात आदिवासी समाज में भी देखी जा सकती है, जिसके कारण आदिवासियों को अपने ही पूर्वजों के संपत्ति से बेदखल किया जा रहा है। विकास के नाम पर सरकार द्वारा इस प्रकार का षड्यंत्र आदिवासियों के विरुद्ध खेला जा रहा है। इस संदर्भ में अश्विनी कुमार पंकज अपने लेख 'उपनिवेशवाद और आदिवासी संघर्ष' में कहते हैं- ''यह व्यवस्था लुटेरी और हत्यारी है तथा यह

आदिवासी क्या किसी भी आम नागरिक को कोई बुनियादी सुविधा और मौलिक अधिकारों को उपभोग का स्वतंत्र अवसर नहीं देने जा रही, क्योंकि विकास की उनकी अवधारणा इस नस्ली, धार्मिक और सांस्कृतिक सोच की देन है जिसमें आदिवासियों, स्त्रियों दलितों और समाज के पिछड़े तबकों के लिए कभी कोई जगह नहीं रही है।"[2] इससे ज्ञात होता है कि आदिवासी समाज को अपने ही अधिकारों से तिरस्कृत रखा गया है। कभी उनको समाज में कोई स्थान नहीं देना चाहते तथा हीन भावना से युक्त होकर ही देखा गया है जिसके कारण मुख्यधारा समाज अपने वर्चस्व को कायम रख पायी है।

आदिवासी समाज की समस्याओं और चुनौतियों का तीव्र रूप देखी जा सकती है। रोज केरकेट्टा की कहानियों में आदिवासी समाज में व्याप्त समस्याओं का चित्रण मिलता है। उनकी कहानियों में समस्याएं इस प्रकार है- स्त्री शोषण की समस्या, विस्थापन तथा पलायन की समस्या, जातिगत समस्या, औद्योगीकरण की समस्या, लैंगिक भेदभाव की समस्या। इस सभी समस्याओं पर विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत होगा।

3.1 स्त्री शोषण की समस्या

भारतीय समाज में स्त्री शोषण की समस्या सदियों से विद्यमान है। स्त्री शोषण का सबसे प्रमुख कारण पितृसत्तात्मक विचारधारा माना जा सकता है। मुख्यधारा समाज में स्त्रियां पुरुषों द्वारा अधिक शोषित, पीड़ित रही है। किंतु स्त्री विमर्श ने उनके जीवन में समानता के अधिकारों को उद्वेलित किया जिसके कारण कुछ हद तक स्त्रियां अपने जीवन में पुरुषों के साथ समान भागीदारी है। लेकिन आदिवासी समाज इसके विपरीत है। यहां स्त्रियां अपने समाज में शोषण का शिकार पुरुषों से नहीं होती है। स्त्रियों को पुरुषों द्वारा सम्मान और आजादी दी जाती है। आदिवासी समाज मुखियाधरा सामज के शासक वर्ग, पूंजीपतियों द्वारा उनका भरपूर शोषण किया जाता है। एक संस्कृति जब दूसरे संस्कृति के संपर्क में आती हैं तो वहां की

विकृतियां आदिवासी समाज में भी दिखाई देने लगती है और कालांतर में आदिवासी समाज में भी कुछ हद तक शोषण दिखाई देता है।

रोज केरकेट्टा की कहानियों में स्त्री शोषण के अनेक उदाहरण मिलते है। 'बड़ा आदमी' और 'भंवर' कहानी में आदिवासी स्त्रियां बलात्कार का शिकार होती हैं। 'बड़ा आदमी' कहानी में हीरा नामक पात्र है अपने पति के साथ पंजाब जाती है। वहां पर जगत सिंह सवर्ण वर्ग के व्यक्ति द्वारा उसका बलात्कार होता है। इसका उदाहरण इस प्रकार है, हीरा से सखियों ने पूछा- "जब तुम्हारा पति ही तुम्हारी रक्षा नहीं कर रहा था, जबकि मालिक और उसके बेटे दुष्कर्म कर रहे थे, तो तुमने फांसी क्यूं नहीं लगा ली।"[3] इससे स्पष्ट होता है कि भूमंडलीकरण के इस दौर में वर्चस्ववादी समाज द्वारा आदिवासी स्त्रियों का शोषण जारी है। ऐसे ही दूसरा उदाहरण 'भंवर' कहानी से मिलता है। कहानीकार बताती है- "छोटी लड़की किवाड़ की आड़ में छिपी थी। उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया। वह उस घनघोर वर्षा में निकलकर कहां भागी, पता नहीं चला। सुबह होने से पहले मां-बेटी को फरसे और गंडासे से टुकड़े-टुकड़े किया जा चुका था।"[4] इस प्रकार आदिवासी स्त्रियों को स्वच्छंद यौन की वस्तु के रूप में देखा जाता है और आज उत्तर आधुनिकता के दौर में ऐसी बहुत सी घटनाएं सुनने को मिलती है।

आदिवासी स्त्रियों का लगातार शोषण होता आ रहा है। इसका उदाहरण 'घाना लोहार का' कहानी में तथा 'जिद' कहानी में भी दिखाई देती है। 'घाना लोहार का' इस कहानी में रोपनी नामक आदिवासी पात्र है और जिसके साथ संबंध बनाती वह सवर्ण वर्ग का है। जब रोपनी ने अपने अधिकारों की मांग की तो सवर्ण वर्ग से यह सहा नहीं गया। इसका उदाहरण इस प्रकार है- "गरीब और नीची जातवाली इतना अकड़ कर बोले, उसे यह समाज क्यों सहेगा? लोग सोमारू और रोपनी पर टूट पड़े। उनके मुंह से कौन सी गाली नहीं निकली यह बताना मुश्किल है। सोमारु और रोपनी को वे तब तक मारते रहे जब तक दोनों बेहोश नहीं हो गए फिर उन्हें वहीं छोड़कर वापस चले गए।"[5] इस प्रकार स्वर्ण वर्ग द्वारा आदिवासी स्त्रियों का शोषण दिखाई देता है। आदिवासी होने के कारण मुख्यधारा के समाज में उन्हें कोई दर्जा नहीं दिया जाता। रोज केरकेट्टा की कहानियाँ आदिवासी स्त्रियों के प्रतिरोध

तथा संघर्षशीलता को भी उजागर करती है। आदिवासी समाज पर हो रहे प्रताड़नाओं से, जाति व्यवस्था से निजात तथा दोनों समाज में समन्वय की भावना का निर्माण इसका मुख्य उद्देश्य है।

'ज़िद' कहानी में भी कोलेंग नामक आदिवासी स्त्री है। मुख्यधारा के समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए संघर्ष करती है। उसे आदिवासी होने के कारण सही वेतन नहीं दिया जाता है। इसका उदाहरण इस प्रकार है कोलेंग कहती है- "पांच महीने से मेहनताना मेरा दबाकर बैठा है। ऊपर से कहता है, सर्टिफिकेट खरीद कर लाई है। जांच कर लीजिए जांच यदि जाली है तो कीजिए जांच है हिम्मत।"[6] इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिवासी स्त्रियों का सामाजिक स्तर पर उनका शोषण हो रहा है। आदिवासी समाज में आदिवासी स्त्री हो या पुरुष लगातार संघर्ष कर रहे हैं। कोलेंग भी लगातार संघर्ष कर रही है और मुख्यधारा का समाज सदैव अपना प्रभुत्व जमा कर रखना चाहता है किंतु कोलेंग अपनी जिद में आड़ी है कि उसे आगे बढ़ाना है। यह जिद उसके लिए बेहतर है अपने मुकाम को हासिल करने के लिए।

इसी का और एक उदाहरण 'फिक्स्ड डिपॉजिट' कहानी में भी देखने को मिलता है। इस कहानी के माध्यम से यह ज्ञात होता है जो युवा है वह अपने माता पिता के द्वारा सिखाए गए मूल्यों को भूलते जा रहे हैं और रोजगार न होने कारण वे जो भी मां-बाप के पास पूंजी होती है उस पर निर्भर रहते है। इस कहानी में बेटा अपनी मां को पैसों के कारण मारता है जो इस प्रकार है, रोते रोते दीदी जोर से बोली- "मां को अपनी मां को आंगन में घसीट घसीट कर मारा क्योंकि उसकी बेटी रुपया ले गई थी यही दोष लगा रहा था।"[7] इस प्रकार आदिवासी समाज में स्त्री शोषण को देखा जा सकता है।

मुख्यधारा समाज द्वारा आदिवासी स्त्रियों का लगातर शोषण होता आया है। स्त्री शोषण उदाहरण 'मैना' कहानी में दिखाई देती है। वह इस प्रकार है_"तीनों दौडानेवाले लोग उसके पीछे भागे और दबोच लिया उसे जंगल में घसीट कर ले गए एक पेड़ के नीचे दो लोगों ने उसे लड़की को गिरा दिया एक ने सर की तरफ दोनों बड़ों को दबाया दूसरे ने दोनों पैरों को दबाया लड़की रोटी चीखती लड़ती

रही पर अंत में लाचार हो गई।"[8] यह घटना तब घटी जब आदिवासी लड़कियां पर्व के अवसर में अपने लिए कपड़े खरीदने के लिए हार्ट में जाती हैं। जब वे सामान खरीद कर वापस लौटते हैं, तब पगडंडी पर ताश खेलनेवाले चार लोगों के बगल से गुजरती हैं। उनका चेहरा अपने मनपसंद कपड़े पाने के कारण उल्लासित था। वे हस्ती अपने मगन में जा रही थी। तब वे झरिया के निकट पहुंची और लांगने की तैयारी करने लगी। वहीं पर छोटे-छोटे चरवाहों का झुंड भी पास में थे। झरियाडीपा मइटखोपा के लड़के गेंद खेल रहे थे। खेल देखने के बहाने रूपु और फिलमोन पगडंडी की और पीठ फेर कर बैठे थे। तभी ताश खेलने वालों में से एक उठा और अंगड़ाई ले लेते हुए जोर से आवाज निकाली। लड़कियों ने पलट कर देखा। लेकिन उनके मन में किसी तरह का शंका नहीं उठा। वह आदमी तेज कदम से पगडंडी की और जाने लगा। उसके पीछे उसके दोनों दोस्त आ रहे थे। लेकिन जो चौथा आदमी था वह वहीं बैठा रहा और सामान समेटने लगा। तेज कदमों से आदमी को आते देख लड़कियां दौड़ने लगते हैं। उन्हें दौड़ते देख आदमी भी दौड़ने लगा। घबराहट के मारे लड़कियों ने अपना समान वहीं फेंक दिया और गेंद खेलने वालों की तरफ दौड़े। एक पगडंडी में गांव की तरफ दौडी। एक जंगल की तरफ दौडी। लड़की जंगल की ओर भागी थी, उसके साथ यह घटना घटित हुई।

राहिला रईस अपने लेख 'स्त्री विमर्श: सामाजिक एवं राजनीतिक संदर्भ में' नारी शोषण के संबंध में कहती हैं- "पितृसत्तात्मक समाज के नैतिकता बोध का यह मर्मस्थल है। स्त्री की देह और उस पर उसका दखल। किसी भी कोटि का पुरुष यही मानना चाहता है कि बलात्कार के द्वारा स्त्री को तोड़ा जा सकता है।"[9]

स्त्रियों का शोषण सिर्फ शारीरिक रूप से ही नहीं होता है बल्कि उनके श्रम को लेकर भी शोषण किया जाता है। आदिवासी समाज में श्रम की महत्ता है किंतु मुख्यधारा समाज में श्रम की महत्व को नहीं समझते क्योंकि उनके पास पैसा है। इसलिए वे श्रम को खरीदते हैं और आदिवासियों में श्रम कभी भी मोल भाव वाला नहीं रहा है। वह विनिमय वाला रहा है। जहां पर पैसा है वहीं मुनाफा भी आता है। आदिवासी समाज में पैसा नहीं है लेकिन आदिवासी स्त्रियां अपनी अनाज बेचकर पैसे कमाती है। आदिवासी स्त्रियां मोल भाव करना नहीं जानती। इसलिए सामने

वाला व्यक्ति जितना ज्यादा अपना मुनाफा देखते हैं उतना ही वह कम दाम लगता है जो बाजार रेट होती है उसका न्यूनतम मूल्य ही बताते हैं। इस प्रकार स्त्रियों का शोषण देखा जा सकता है।

अतः कहा जा सकता है कि मुख्यधारा समाज स्त्रियों का शोषण करता आ रहा है। यह भी देखा जा सकता है कि आदिवासी समाज में भी वर्तमान में स्त्रियों का शोषण दिखाई देता है। औद्योगीकरण ने आदिवासियों के जीवन शैली को प्रभावित किया है, जिसके कारण आदिवासियों में भी स्त्री शोषण दिखाई देता है।

3.2 विस्थापन तथा पलायन की समस्या

विस्थापन तथा पलायन यह दो बड़ी समस्याएं हैं जिनका सामना आदिवासी समाज वर्षों से करते आ रहे हैं। सबसे पहले विस्थापन तथा पलायन के शाब्दिक अर्थ जान लेना आवश्यक होगा जिससे यह समझने में सुविधा होगी कि विस्थापन किसे कहते हैं और पलायन से क्या तात्पर्य है।

विभिन्न शब्दकोश में विस्थापन का अर्थ इस प्रकार दिया गया है-

I.बृहद हिंदी शब्दकोश के अनुसार विस्थापन का सामान्य अर्थ है- "किसी व्यक्ति यह समूह को उसके निवास स्थान से बलपूर्वक हटाना।"[10]

II.मानक विशालहिंदी शब्दकोश के अनुसार विस्थापन का अर्थ इस प्रकार है- "बलपूर्वक किसी को अपने स्थान से हटाना उव्दासित करना। विस्थापित का अर्थ है उव्दासित अथवा जिसे अपने निवास स्थान से हटा दिया गया हो।"[11]

III.ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार विस्थापन का अर्थ- 'डिस्प्लेसमेंट' किसी को उसके मूल स्थान से दूर करने हटाने, उखाड़ने की प्रक्रिया।"[12]

IV.हिंदी-हिंदी शब्दकोश के अनुसार पलायन का अर्थ है- 'भगाना कहीं चले जाना'।[13]**(डॉ.मनु प्रकाश, डॉ. मिश्रा कुमार आदित्य सुनीता, हिंदी-हिंदी शब्दकोश, चॉइस इंटरनेशनल नई दिल्ली,** पृ. **संख्या 232)**

V.वरिष्ठ आदिवासी लेखिका रोज केरकेट्टा के अनुसार 'पलायन' का अर्थ है- "देश छोड़कर प्रदेश की खोज में जाने को पलायन कहते हैं।"[14] इस प्रकार विभिन्न शब्दकोशों तथा विद्वानों ने विस्थापन तथा पलायन के अर्थ को व्यक्त किया है।

आदिवासी बहुल क्षेत्र में कोयला, बॉक्साइट मैंगनीज, माइका, यूरेनियम अधिक मात्रा में पायी जाती है जहां आदिवासी निवास करते हैं। इन्हीं इलाकों को देश के विकास के लिए चुनी जाती है किंतु आदिवासियों के हितों के बारे में विचार नहीं किया जाता है। आदिवासी क्षेत्रों में नदियों की प्रभाव को रोक कर बांधों का निर्माण विद्युत उत्पन्न के लिए किया जाता है। किंतु इससे आदिवासी लाभान्वित नहीं होते हैं इसके कारण आदिवासियों को विस्थापन तथा पलायन का सामना करना पड़ता है। 'फिक्स्ड डिपॉजिट' इस कहानी में मनोहर दा है। वह गांव में रहता है और किटी और उसका भाई शहर से आते हैं उनसे मिलने। वे दोनों वहां पर खूब मजे करते हैं और फिर दोनों वापस शहर में लौट जाते हैं। वहां उन्हें ऐसी खबरें समाचार पत्रों में मिलता रहता कि किस गांव की कितनी जमीन का अर्जन भू-अर्जन पदाधिकारी कर रहे हैं। प्लॉट नंबर, खसरा, रकबा चौहद्दी आदि पर ध्यान कभी नहीं जाता। मनोहर दा उनके लिए अरवा चावल भेजता था। गांव में मध्यम श्रेणी के बांध बांधा जा रहा था। अखबारों में बड़े-बड़े नोटिस भी निकले जाने लगे थे। किंतु उनके गांवों तक समाचार नहीं पहुंच पाती थी। इसका उदाहरण इस प्रकार है- "अचानक एक दिन सर्वे के लिए लोग आए और दिनभर नाप- जोखकर कर खूंटा गाड़कर चले गए। टोपी पहने इंजीनियरों, ओवरसीरों और चैन मैंनो का दल इधर-उधर नापता रहा। उन्होंने मनोहर दा के आंगन को, हराधन लोहार के बड़ी को और नीचे से पूरे गांव को खंभों के घेरों के अंदर कर लिया था। शाम को जाते-जाते उन्होंने घोषणा कर दी थी "एक वर्ष के अंदर गांव खाली कर देना।"[15] इससे स्पष्ट हो जाता है कि आदिवासियों को विस्थापन का सामना करना पड़ रहा है। इसके संदर्भ में रमणिका गुप्ता कहती हैं- "जमीन, भाषा, पहचान सब छीना जा रहा है। विकास से विस्थापित हो रहे हैं और विस्थापन उन्हें पलायन कर मजबूर कर रहा है। अपने ही घर से बेदखल होकर वे परदेसी बन गए हैं और अपने ही प्रदेश में अल्पसंख्यक।"[16]

ऐसे ही दूसरा उदाहरण इस प्रकार है ‘मट्टू, तोबियस, और मेंठ लोग हमें ही डांटने लगे थे, “चुप रह बूढ़ा। किसके सामने बात कर रहा कर रहा है नहीं चिन्हता है। हाकिम है, हाकिम!”[17] उपरोक्त वाक्य से विदित होता है यदि आदिवासी अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाते हैं तो उन्हें चुप कर दिया जाता है जिसके कारण वह मजबूर हो जाते हैं और प्रतिरोध भी नहीं कर पाते है। उन्हें मुआवजा देने का वादा किया जाता है तथा पुनर्वास, पुनर्स्थापना का वादा भी करते हैं किंतु जिस जमीन से उन्हें विस्थापित किया गया था, उसे आदिवासियों ने उपजाऊ बनाया था जिस पर वह निर्भर थे। अब वो अपने परिवार का भरण-पोषण नहीं कर पाते और वे पलायन का रास्ता अपनाते हैं। इसके अतिरिक्त वे शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक समस्याओं से भी जूझते हैं। इसका उदाहरण इस प्रकार है- “देख रहे हो ना मेरे भाइयों, हमारा घर डूब चुका है, पीछे से दो गांव भी खाली कर लिए गए हैं। मैं कहां जाऊं सोच ही नहीं पा रहा हूं।”[18] इस प्रकार देखते हैं कि आदिवासियों को जबरन अपने गांव से हटाया जाता है, यदि वे विरोध करते हैं तो पुलिस की धमकी देकर उन्हें चुप करा देते हैं।

इस कहानी में विस्थापन के कारण मनोहर दा की मृत्यु हो जाती है। उनका एक बेटा और एक बेटी है। मुआवजे में मिले पैसों को मनोहर दा ने अपने बेटे के नाम रखा किंतु वह शराब पीने, मौज-मस्ती में सारे पैसे उड़ाने लगता है इसलिए मनोहर दा ने उसे निकालकर छुपा दिया। किंतु पैसे ना मिलने पर उनके बेटे ने अपने मां-बाप को पीटता है। अपने ही परिवार के लोगों द्वारा उसे कोई सहारा नहीं मिला जिसके कारण वह अंदर से टूट जाता है और संघर्ष करते-करते उसकी मृत्यु हो जाती है। उनका अंतिम संस्कार करने के लिए किटी और उसके भाई शहर से अपने गांव आते हैं और मनोहर दा के शरीर पर कफ़न ढक देते हैं। लेखिका इस कहानी के अंत में वाक्य कहती है वह इस प्रकार हैं- “यह सब आज कितनी ‘बेजरूरत की चीज' उनके लिए हो गई थी। यही उनकी लाश भी बोल रही थी, 'बेजरूरत की चीज’।”[19] इस वाक्य से ज्ञात होता है कि जब मनुष्य को सबसे ज्यादा सहायता की जरूरत होती है तब कोई भी व्यक्ति सामने नहीं आता किंतु जब व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तब उसे देखने आते हैं। जीवित रहते उसकी कोई अहमियत नहीं होती

है। इस कहानी के माध्यम से कहा जा सकता है कि जो सांत्वना, संवेदना व्यक्त की जा रही है वह भी 'बेजरूरत की चीज' के समान ही है क्योंकि उसकी अब कोई अस्तित्व ही नहीं बचा है।

पिता की मृत्यु के बाद उसकी बेटी मीना अपनी पढ़ाई छोड़कर शहरों की ओर पलायन करती है। इसका उदाहरण है- "नहीं काका, मुझसे सहा नहीं जाता। भाई पीकर पिता को मारता है, मां को मारता है। उन्हें बचाने जाती हूं, तब मुझे भी मारता है।... मैं पढ़ रही हूं इसलिए भी मारता है।...गांव में कौन रह गया है? और अब तो खेती बारी है नहीं, सब कुली-कबडी है।"[20] इस उदाहरण से पता चलता है कि विस्थापन के प्रभाव का वह पूरे आदिवासी समाज को ऐसी स्थितियों में डाल दिया है जहां पर लोगों को अपने रोजी-रोटी तक नसीब नहीं होती। खेत खनन कार्यों के कारण बंजर बन गए हैं और जीवन यापन करना कठिन हो गई है।

'बड़ा आदमी' इस कहानी में भी पलायन की समस्या को देखे जा सकता है। इस कहानी में चामू जेठू तथा गांव के नवयुवक शहर की ओर पलायन करते हैं वर्तमान में आदिवासी समाज में देखा जाए तो सबसे अधिक आदिवासी समुदाय के लोग ही पलायन कर रहे हैं चाहे वह पुरुष हो या स्त्री इसका उदाहरण इस प्रकार है- "जाते-जाते कहना नहीं भूला, कभी पंजाब घूमने आओ काका! बड़े-बड़े बिल्डिंग और बड़े-बड़े फारम हैं, गोल-नार साहब लोग भरे हुए है।"[21] इस प्रकार देखते हैं कि आदिवासी नवयुवक अपने गांव में अपनी परंपरागत काम को ना करते हुए शेरों की ओर पलायन करते हुए दिखाई देते हैं ऐसी स्थिति इसलिए उत्पन्न मानी जा सकती है क्योंकि जो शासन व्यवस्था है वह अपनी चीजों को अच्छा बात कर आदिवासियों की परंपरागत ज्ञान को नष्ट कर दिया है और आदिवासी समाज उसकी ओर झुकी है। आदिवासियों की जो व्यवस्था है वह अलग है और मुख्यधारा का व्यवस्था द्वारा थोपी जाने के कारण ऐसी स्थितियां विद्यमान हैं।

निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि आदिवासियों को विस्थापन तथा पलायन का सामना करते आ रहे हैं और सरकार भी इन समस्याओं का निवारण करने में असमर्थ रही है। कालांतर से देखा जा सकता है कि आदिवासियों को आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से उनका दमन होता आ रहा है।

3.3 जातिगत समस्या

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति वैदिक काल से मानी जा सकता है। इस व्यवस्था में जाति के आधार पर कार्यों का विभाजन किया गया था। इस संबंध में यह धारणा प्रचलित है कि ब्राह्मण ब्रह्म के मुख से, क्षत्रिय बाहू से, वैश्य जांघ से और शूद्र पैर से पैदा हुआ हैं। इसी के आधार पर भारतीय समाज में कार्यों का निर्धारण हुआ है। ब्रह्मण जो है शिक्षा देने के लिए, क्षत्रिय युद्ध, अस्त्र-शस्त्र के लिए, वैश्य को कृषि कार्य के लिए तथा शुद्ध को ऊपर के तीनों वर्णन की सेवा करने के लिए। इस प्रकार समाज में एक संगठित व्यवस्था के निर्माण बनाई गई किंतु वर्तमान में इसकी जो स्वरूप है वह बदल गया। आज उच्च वर्ण के लोग जो हैं निम्न जाति के लोगों को हिन दृष्टि से देखते हैं तथा समाज में उन्हें कोई भी स्थान नहीं है। सार्वजनिक जगहों से पानी ले जाना तथा पानी पीना वर्जित था। इस प्रकार देखा जा सकता है कि वैदिक तथा उत्तर वैदिक काल तक आते-आते समाज में कुरीतियां फैल चुकी थी। वास्तव में देखते हैं निम्न जातियों के लिए संविधान में ऐसे अनेक प्रावधान लागू किए गए है जिसका लाभ कुछ हद तक उन्हें प्राप्त है फिर भी समाज में जाति के नाम पर भेदभाव विद्यमान है। आगे जाति शब्द के अर्थ एवं परिभाषा को संक्षेप में अध्ययन होगा।

जाति का अर्थ एवं परिभाषा कुछ इस प्रकार हैं-

'जाति' शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द cast का हिंदी रूपांतरण है। अंग्रेजी का 'cast' शब्द पुर्तगाली शब्द casta से बना है जिसका अर्थ प्रजाति, जन्म या भेद होता है।[22]

विभिन्न विद्वानों ने जाति शब्द को परिभाषित की है जो निम्नलिखित है-

चार्ल्स कूले के अनुसार- "जब एक वर्ग लगभग पूर्ण रूप से वंशानुक्रम पर आधारित होता है तब उसे हम जाति कहते हैं।"[23] (डॉ.मुखर्जी एवं अग्रवाल, समाजशास्त्र, संस्करण 2021-22, एसबीपीडी पब्लिकेशन आगरा, पृ. संख्या 63)

सी केतकर ने अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ कॉस्ट इन इंडिया में जाति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "जाति एक ऐसा समूह है जिसके दो विशेषताएं है। 1) इस समूह का सदस्य वही व्यक्ति होता है जो इसमें जन्म लेता है। 2)इसके सदस्य सामाजिक नियमों के अनुसार अपने समूहों से बाहर विवाह नहीं कर सकते।"[24]

उपरोक्त सभी परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि व्यक्तियों की जाती जन्म से निर्धारित रहती है और वह अपरिवर्तनीय होती है।

भारतीय समाज में कार्य कुशलता पर आधारित जाति व्यवस्था की संकल्पना थी वह अब कालांतर में परिवर्तित होकर जाति में उच्च-नीच जैसे विचार व्यक्तियों में उत्पन्न हो गई है। जिसके कारण सामाजिक जो व्यवस्था है उसमें स्वर्ण जाति का व्यक्ति स्वयं को कुलीन समझता है तथा निम्न दो वर्णों को निचला दर्जा देते हैं। यह जो मानसिकता है वह व्यक्तियों को इतना संकुचित बना दिया है कि वह मानवता जैसी मूल्यों को त्याग कर जाति को प्रधानता देते हैं, जिसके कारण समाज में उच्च-नीच की समस्या उत्पन्न हुई है। भारतीय समाज में स्वर्ण वर्ग द्वारा निम्न जाति का शोषण मध्यकाल से ही देखने को मिलता है। सवर्ण जाति स्वयं निम्न जाति के व्यक्तियों का दमन करती हैं। उन्हें अपने ही अधिकारों से वंचित रखते हैं। समाज में दलित, आदिवासियों को निम्न दर्जा दिया जाता है किंतु आदिवासी समुदाय में देखें तो वहां जाति व्यवस्था विद्यमान नहीं है। संविधान में आदिवासियों को अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के अंतर्गत रखा गया है। इसके कारण आदिवासियों को जाति से संबोधित किया जाता है किंतु आदिवासी जाति नहीं समुदाय है। समुदाय होने के कारण सामूहिकता उन में प्रधान रूप से दिखाई देता है। इसके संदर्भ में डॉ.उत्पल के पटेल अपनी पुस्तक अनुसूचित जनजाति एवं उनकी आकांक्षाएं में लिखते हैं- "ट्राइब का हिंदी अनुवाद 'जनजाति' गलत है क्योंकि आदिवासी समाज में जाति की कोई अवधारणा नहीं रही। आदिवासियों के विभिन्न नाम या संज्ञाएं उनके आंचल, गण चिन्ह, गोत्र, वंश, प्रजाति आदि पर आधारित रहे हैं। यह एकमात्र समाज है जो वर्ग व जाति की अवधारणा को अपने यहां स्थान नहीं देता।"[25]

इससे स्पष्ट होता है कि आदिवासी समाज में जाति व्यवस्था विद्यमान नहीं है और वह सामूहिकता पर विश्वास करते हैं। जिसके कारण आदिवासी भद्र समाज की तुलना में अधिक सभ्य प्रकृति और मानव के प्रति संवेदना, सामुदायिक सहयोग, पर्यावरण के प्रति चेतना, सहजता, भिन्न संस्कृति और सार्वभौमिक मूल्य आदिवासियों में पायी जाती है। इसी के साथ में स्वतंत्र रूप से अपना जीवन यापन करते हैं। यहां कोई भी शासक वर्ग दिखाई नहीं देता है। आदिवासी समाज जब एक संस्कृति से दूसरे संस्कृति में आदान-प्रदान करता है उसका खामियाजा भी उसे भुगतना पड़ा है। सामाजिक स्तर पर भी मुख्यधारा समाज द्वारा सवर्ण जाति के होने के कारण आदिवासियों को प्रताड़ित करते आ रहे हैं। भारतीय व्यवस्था में जातिगत भेदभाव वास्तव में भी विद्यमान है। यही भेदभाव आदिवासी समाज को भी झेलना पड़ रहा है।

लेखिका रोज केरकेट्टा अपनी कहानियों में जातिगत समस्या के कारण आदिवासी स्त्रियों के संघर्ष और प्रतिरोध को बयां करती है। 'घाना लोहार का' कहानी में इसका उदाहरण देख सकते हैं। इस कहानी में रोपनी नामक आदिवासी स्त्री है और जिसे वह प्रेम करती है वह स्वर्ण जाति का है। जगत सिंह रोपनी को पत्नी का अधिकार नहीं देता। रोपनी और जगत सिंह से सोमारू का जन्म हुआ किंतु सोमारू को भी अपने अधिकारों से वंचित रखा जाता है। इसका उदाहरण सोमारू के इस वाक्य से देख सकते हैं- "मेरी मां रोपनी जवान थी, तब से इस घर में रह रही है। मैं यहीं पैदा हुआ हूं। मैं जगत सिंह का बेटा हूं, जगत से यह मेरा बाप है। भले ही मेरी मां आदिवासी है, मैं ऊंची जात का हूं जगत सिंह का बेटा हूं।"[26] इस वाक्य से विदित होता है कि समारोह अपने अधिकारों के प्रति सजक है किंतु सवर्ण जाति उनके श्रम को स्वीकार करते हैं किंतु उनके अधिकारों की जब बात आती है तो वह उन्हें वंचित रखते हैं। मुख्यधारा समाज में आदिवासियों की अस्तित्व को ही नाकार दिया जाता है। उसका उदाहरण इस प्रकार है- "बाहरिया को वैसा ही रहना चाहिए। अरे पतल तभी तक ठीक है जब तक कोई उस पर ना खाया हो, खाने के बाद तो पतल को फेंकना ही है। जगत सिंह सीधा आदमी है कि अभी तक इन्हें घर पर रखे हुए हैं।"[27] इस वाक्य के माध्यम से लोगों की मानसिकता का पता

चलता है कि आदिवासी स्त्रियां केवल उपभोग के लिए है। उनका इसके अतिरिक्त कोई अस्तित्व नहीं है। इससे यह ज्ञात होता है कि मुख्यधारा समाज में जाति व्यवस्था का प्रमुख स्थान है। समाज जाति व्यवस्था से निजात नहीं हो पाया है। इसका उदाहरण 'जिद' कहानी में देखने को मिलता है। आदिवासियों को स्वर्ण जाति द्वारा हमेशा ही दबाया जाता है। उसे जानबूझकर पूरे दिन खटाते रहते हैं। कोलेंग ग्रेजुएट तक शिक्षा प्राप्त की है और सर्व शिक्षा अभियान से जो जुड़ी होती है। दफ्तर में अफसर द्वारा उसकी अवहेलना की जाती है। वह इस प्रकार है एपीयो ए. सिंह कहते हैं- "तो क्या हम सर्टिफिकेट खरीद कर लाए हैं बड़ों से बात करने की तमीज नहीं है आखिर है तो 'कोल्हीन' ही।"[28] इस प्रकार देखा जा सकता है कि स्वर्ण जाति आदिवासियों को उनके जाति से संबोधित करते हैं और आदिवासियों को कदम-कदम पर संघर्ष करना पड़ता है। समाज उनकी कुशलता या प्रतिभा को नहीं देखते जिसके कारण आदिवासियों का बस शोषण ही किया जाता है।

उपर्युक्त दोनों उदाहरण में जातिगत समस्या विद्यमान है और स्वर्ण जाति सदैव आदिवासी समाज को पिछड़ा हुआ मानता है। उन्हें दफ्तरों में काम तो कराया जाता है किंतु उसका फायदा स्वर्ण जाति के लोग उठाते हैं। परिणामस्वरूप आदिवासी स्त्रियों की संघर्ष और अधिक बढ़ जाती है और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में वह अधिक कष्ट सहती है। इस विषय के संबंध में वरिष्ठ आलोचक वंदना टेटे का मत है_"मुख्यधारा का समाज में जब अधिकारों की बात आती घाना है तो वह देने को तैयार नहीं चाहे वह आदिवासी स्त्री हो या पुरुष। यह प्रशासन आदिवासियों की नहीं है। वे आदिवासियों को बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं इसलिए यह भेदभाव हमेशा रहेगा।"[29]

3.4 औद्योगीकरण की समस्या

औद्योगीकरण का आरंभ 18वीं शताब्दी में यूरोप में होता है। औद्योगीकरण मूल रूप से इंग्लैंड की देन है। औद्योगीकरण का प्रभाव सिर्फ यूरोप, इंग्लैंड, अमेरिका तक ही सीमित नहीं रही बल्कि भारत जैसी देश में अंग्रेजों के आगमन के पश्चात इसकी शुरुआत हो गई थी। आजादी प्राप्त करने के बाद भारत में औद्योगीकरण

तीव्र रूप से दिखाई देता है। जिसके कारण महानगरों का निर्माण हुआ। देश में शहरीकरण का प्रभाव बढ़ता गया। सरकार द्वारा भारत की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए विदेशी राष्ट्रों से संबंध बनाए जाने लगा तथा अनेक योजनाएं, संगठनों का निर्माण किया गया जिसके तहत आदिवासियों की जमीन छीनी जाने लगी। भूमंडलीकरण के इस दौर में आयात निर्यात की व्यवस्था स्थापित की गई। जहां तक आदिवासियों की बात है आदिवासी क्षेत्रों में व्यापारियों के तौर पर गैर आदिवासी समाज पहले आया। नई-नई चीजों के प्रति आकर्षण के कारण गैर आदिवासी समाज से मिलना-जुलना आरंभ हुआ।

औद्योगीकरण ने आदिवासियों को काफी हद तक प्रभावित किया है। इसके कारण उनकी जो परंपरागत कार्य है वह भी लुप्त होते हुए दिखाई दे रहे है। आदिवासी शहरों की ओर मुड़ने लगे हैं। इसका उदाहरण कुछ इस प्रकार है। 'बड़ा आदमी' कहानी में जाटा बूढ़ा कपास की खेती करता है तथा रुई धुननकर करैया और पेछौरी बनाते है। किंतु जब से भूमंडलीकरण का दौर चला है तब से आदिवासियों की मूल्य, संस्कृत में परिवर्तन दिखाई देने लगा है। चामू के इस वाक्य से देखा जा सकता है- "गमछा को तो उसने जकम बुढ़िया के ऊपर फेंक दिया और बोला_'लो बुढ़िया तुम ओढ़ना, मैं क्या तुम्हारी तरह सड़ रहा हूं, जो ऐसा ओढूंगा, मुझको पैसा दो, मैं रंगचंद चादर खरीदूंगा।"[30] इस वाक्य से पता चलता है कि औद्योगी करण ने आदिवासियों पर गहरा छाप छोड़ है। जिसके कारण अब परंपरागत रूप से बनाई गई कपड़ों की ओर नहीं देखते। बाजारों की चमकीली वस्तुओं की ओर आकर्षण बढ़ते जा रही हैं। आदिवासी समाज के लिए यह चिंताजनक बात है कि वे आधुनिकरण के दौर में अपनी संस्कृति, परंपरागत कार्यो को पीछे छोड़ती आ रही हैं। इसका उदाहरण है- "अब कपास उगाने और हुई कोर्ट ने ढूंढने सूट काटने की जरूरत नहीं रह गई थी। जाटा बूढ़ा-बुढ़िया के घर के बने कपड़े इतनी मजबूत थे कि तीन साल तक उन्हें नए कपड़े की जरूरत नहीं पड़ी। अब धनु, रहटा और चरखा धरणा के ऊपर चढ़ा दिए गए।"[31] इससे ज्ञात होता है कि औद्योगीकरण के कारण जो परंपरागत कार्य थे वह प्रभावित हुए तथा मशिनी यंत्र से कपड़ा बनने की परंपरागत प्रक्रिया थी वह नष्ट हो गई। अतः कहा जा सकता है कि

औद्योगिकरण ने वस्तुओं को बनाने की प्रक्रिया तो सरल और सहज बना दिया परंतु आदिवासियों की पहचान को वह खत्म करती जा रही है।

'दुनिया रंग रंगीली बाबा' इस कहानी में बताया गया है कि आदिवासी समाज में शहरीकरण का प्रभाव उनके जीवन शैली में दिखाई देता है। आदिवासी गांव के कई नवयुवक फौज में भर्ती होते हैं तथा जब भी वापस गांव में वापस लौटते हैं अपने साथ तरह-तरह की चीजें अपने परिवार के लोगों के लिए लाते हैं। सोनपंखी कहती है- "उनकी पत्नियां लक्स, रेक्सोना, जैसे सुगंधित साबुन से नहाती। अपना बच्चों का और पति का कपड़ा सर्फ या रिन साबुन से धोती। सर पर सुगंधित आंवले, केयोकार्पिन तेल लगाती। क्रीम, पाउडर भी लगती। पत्नियां सैंडल या हवाई चप्पल पहनते। उनके बच्चे प्रिंटेड कपड़े पहनते। फौजी की बीवी सिंथेटिक साड़ी पहनती।"[32]

इस प्रकार सोनपंखी इन चीजों के प्रति आकर्षित होती है। इस वाक्य से ज्ञात होता है कि गांव भी अब शहरों में तब्दील होने लगी है और इसका प्रभाव स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। इस कहानी में लेखिका ने औद्योगीकरण के कारण पर्यावरण भी प्रभावित हो रही है इसे भी व्यक्त किया है। वह विजय के माध्यम से बताती है तथा वह अपनी पत्नी आशा को कहता है- "जगत का पानी सूख रहा है पेड़ों के काटने से वर्षा नहीं हो रही है धरती का तापमान हर साल बढ़ता जा रहा है उद्योगों के कारण अब लोग शहरों की ओर भाग रहे है।"[33]

इस से यह विदित होता है कि वर्तमान में देखा जाए तो औद्योगीकरण ने पर्यावरण को सबसे ज्यादा हानि पहुंचाई है। जिसके कारण जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग बढ़ती जा रही है। वर्षा की कमी आदि समस्याएं उत्पन्न हो रही है। अंधाधुंध औद्योगीकरण ने जंगलों तथा उसमें रहने वाले जीव जंतुओं को भी नष्ट करते जा रही है। इसके संदर्भ में उमेश कुमार वर्मा लिखते हैं- "औद्योगीकरण ने नगरीय मनोवृत्तियों को बढ़ावा देकर व्यक्तिवादी तथा लाभ की भावना, अनावश्यक प्रतियोगिता, धनि बस्तियां, औपचारिक संबंधों तथा भौतिकवाद के प्रति आकर्षण पैदा कर आदिवासी समाज में जटिल समस्याओं को भी जन्म दिया है।"[34]

अतः औद्योगीकरण ने स्त्रियों के शोषण को अधिक बल दिया है। अत्यधिक आदिवासी इलाकों में खनन कार्यों के कारण स्त्रियां अपने गांव में नहीं रह रहती है और महानगरों में काम करते हुए अपना पेट पालती है। उन्हें शहरों में मुख्यधारा समाज द्वारा अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस संदर्भ में रोज केरकेट्टा कहती हैं- "औद्योगीकरण और ध्रुवीकरण के चलते इन इलाकों की महिलाएं मानसिक, मनोवैज्ञानिक दबाव में आकर कई तरह की कठिनाइयों का सामना कर रही है और इसका नतीजा यह हो रहा है कि अत्यधिक महिलाएं मानसिक रोगों से एक ग्रस्त हो रहे हैं।"[35] इस प्रकार देखा जा सकता है कि आदिवासी स्त्रियां औद्योगीकरण के कारण अनेक कंपनियों में कार्य करती है तथा उन्हें अनेक मानसिक दबाव से गुजरना पड़ता है।

3.5 लैंगिक भेदभाव की समस्या

पाषाण युग में स्त्रियां महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस युग में खेती तथा पशुपालन कार्य अधिक दिखाई देता है। समाज मातृसत्तात्मक था। वैदिक काल में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति थी। उन्हें धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्र में स्वतंत्र अधिकार था। वे अपने परिवारों तथा सामाजिक निर्णय लेने में भी सक्षम थी। इस काल की स्त्रियां स्वावलंबी थी। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थितियों में परिवर्तन आने लगा। इस काल में स्त्रियों की स्वतंत्रता पर पाबंदी लगा दी गई जिसके कारण उनकी स्थिति दयनीय होती गई। धीरे-धीरे पुरुष सभी कार्यों पर अपना नियंत्रण रखने लगे और स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा गया। पुत्री के जन्म को नकारात्मक तौर पर देखा जाने लगा। यहीं से स्त्रियों के अधिकारों का दमन होते हुए दिखाई देता है।

स्त्रियों पर कई पाबंदियां लगाई गई। धार्मिक ग्रंथो में स्त्रियों के लिए नियम बनाए गए कि उसे अपने जीवन में क्या करना चाहिए। कुछ उदाहरण है जैसे कि 'एक अच्छी स्त्री वह है जो उत्तर नहीं देती', 'पति के पहले पत्नी को भोजन नहीं करना चाहिए' आदि। इस प्रकार स्त्रियों की स्वतंत्रता का ह्रास होता हुआ दिखाई देता है।

मध्यकाल तक आते-आते स्त्रियों की स्थिति अधिक विकृत हो जाती है। इस युग में मुगल आक्रमणकारियों का प्रवेश होता है। इन्हीं के आगमन के पश्चात शासकों द्वारा युद्ध जीते जाने पर पराजय राजाओं के कन्याओं का अपहरण किया। इसी काल में पर्दा प्रथा, सती प्रथा, जौहर जैसे विसंगतियों का उदय हुआ जिसके कारण स्त्रियों को उपभोक्ता की वस्तु के रूप में ही देखा जाने लगा।

19वीं शताब्दी में अंग्रेजों के आगमन के साथ इन सभी कुरितियों में परिवर्तन आने लगा। अंग्रेजों ने भारत में परंपरागत शिक्षा व्यवस्था को हटाकर अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया। इस समय में भारतीय समाज में लिंग भेद की बात विद्यमान थी। लिंग भेद के कारण ही स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं दिया जाता था। यह मानसिकता भारतीय समाज में अपना पेठ जमा कर बैठा हुआ है कि स्त्रियों को पराया धन मानकर उन्हें शिक्षा से वंचित रखा जाता था। इसका उदाहरण 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो' कहानी, में देख सकते हैं जहां पर दया नामक आदिवासी लड़की है, जो शिक्षा ग्रहण करने के लिए तत्पर है। उसका वाक्य इस प्रकार है- दया, 'हां लेकिन तुम तो अपने बेटों को स्कूल भेजते हो?'

मां, 'तुम बेटा होती तो तुमको भी भेजती।'[37] इस प्रकार से देखते हैं कि समाज में लैंगिक भेदभाव की समस्या विद्यमान रही है। इससे यह विदित होता है कि भारतीय समाज में बेटों को प्रधानता दी है जाती है तथा बेटियों को उनकी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए संघर्ष करना पड़ता था। यह समस्या आदिवासी समाज में भी अब विद्यमान है। आदिवासी समाज सामूहिकता, सहभागिता पर विश्वास करता है। गैर आदिवासी समाज में स्त्रियों की जो स्थिति रही है उसकी तुलना में आदिवासी समाज की स्त्रियां अधिक स्वतंत्रता रही है। किंतु उसमें भी पितृसत्तात्मक विचार ने स्त्रियों के उत्पीड़न को दर्शाया है। डॉ. पंडित बन्ने कहते हैं- "आदिवासी समाज में नारी शिक्षा के प्रति उदासीनता पायी जाती है। आदिवासी जनजातियों में नारी का पढ़ना लिखना उसके विवाह के लिए बाधा बन सकता है। उनका पढ़ना लिखना समाज को स्वीकार नहीं है।"[38]अनेक समाज सुधारकों ने समाज में प्रचलित कुरितियों का खंडन किया और समाज में समानता लाने का प्रयास किया गया तथा स्त्रियों के शिक्षा को प्रोत्साहन दिया गया जिसके

कारण स्त्रियां शिक्षा प्राप्त करने लगी शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई और अपने अधिकारों की मांग करने लगी।

आदिवासी समाज में स्त्री पुरुष बराबर का कार्य करते हुए पायी जाती है। जंगलों से लकड़ी काटकर लाना, पशुपालन करना, गृहस्ती संभालना, खेती करना तथा कभी-कभी पुरुषों को शिकार करने में भी सहायता प्रदान करती हैं। आदिवासी समाज में स्त्रियों को सम्मान दिया जाता है। इस समाज में स्त्रियों को अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकते हैं। स्त्रियां स्वयं के लिए वर चून सकती है। यहां मातृसत्तात्मक समाज दिखाई देता है। जहां संपत्ति का अधिकार बेटी होती है। कुछ अन्य आदिवासी समाज में पितृसत्तात्मक समाज विद्यमान है। गैर आदिवासी समाज में और आदिवासी समाज की स्त्रियों की पस्थितियों में अंतर पायी जाती है। गैर आदिवासी समाज में स्त्रियों को सामाजिक रीति रिवाज से, सामाजिक बंधनों, नियमों के कारण स्त्रियां अपने आप को स्वच्छंद महसूस नहीं करती है। किंतु इसके विपरीत आदिवासी समाज में स्त्रियां ऐसे बंधनों से मुक्त दिखाई देती है। गैर आदिवासी समाज में स्त्रियां जितना आधिक प्रताड़ित होती है, उतना आदिवासी समाज की स्त्रियां नहीं हुई है। आदिवासी समाज में स्त्रियों के लिए कड़े नियम अवश्य बनाए गए हैं जिसके कारण पुरुष अपने आप को स्त्रियों से श्रेष्ठ स्थापित कर सके। यह नियम स्त्रियों के संपत्ति के अधिकार को खंडित करने के लिए बनाई गई थी। इसके पीछे आदिवासी समाज में धारणा थी कि यदि कोई स्त्री के गैर आदिवासी से विवाह करती है तो संपत्ति गैर आदिवासी समाज में चली जाएगी जिसके करण आदिवासियों के संपत्ति पर खतरा पैदा हो सकता है। इस संबंध में रमणिका गुप्ता अपने सुझाव देती हुई कहती है-“ आदिवासियों की जमीन दारू के बदले पुरुष समाज की गैर आदिवासियों को हस्तांतरित करते आया है। इसलिए उनकी यह तर्क की स्त्री को संपत्ति में हक मिल जाने से स्त्रियों द्वारा गैर आदिवासियों के साथ विवाह करने पर जमीन का हस्तनांतरण हो जाएगा गलत है। इस तर्क की काट तो कानून में छोटा सा संशोधन की स्त्री द्वारा गैर आदिवासी से शादी करने के बाद जमीन की हकदार आदिवासी स्त्री और उसके बच्चे ही होंगे उसका पति नहीं, लाकर की जा सकती है।”[39] इस प्रकार देखा जाए तो स्त्रियां यदि

गैर आदिवासी समाज में विवाह भी करती हैं तो उनकी संपत्ति उनके पास ही रहेगी किंतु इस तर्क के साथ यह भी जोड़ा जा सकता है यदि पत्नी की मृत्यु हो जाती है तो जो संपत्ति उसके नाम पर है वह वापस अपने परिवार के पास हस्तांतरित की जाए क्योंकि बच्चे अपने पिता की संपत्ति के हकदार होंगे। इस प्रकार के संशोधन से आदिवासी समाज में संपत्ति के हस्तांतरण की समस्या को रोका जा सकता है। पुरुष समाज इसे स्वीकार नहीं करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि आदिवासी समाज में भी पुरुष संपत्ति पर अपना प्रभुत्व रखना चाहते है।

आजादी प्राप्त करने के पश्चात भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा पर जोर दिया गया जिसके कारण स्त्रियां शिक्षा ग्रहण करने लगी और अपने अधिकारों के प्रति चेतना उन में जगने लगी। इस संदर्भ में महावीर प्रसाद द्विवेदी कहते हैं- "यदि शिक्षा पुरुषों के लिए लाभदायक है तो स्त्रियों के लिए भी लाभदायक हो सकती है।"[40]

इससे स्पष्ट होता है की स्वतंत्रता के पश्चात स्त्रियां शिक्षा प्राप्त कर रही है और आदिवासी समाज में भी आदिवासी स्त्रियां शिक्षा प्राप्त कर रही है। इस संदर्भ में रोज केरकेट्टा अपनी लेख 'आदिवासी महिलाओं का शोषण रोकना होगा' में लिखती हैं- "महिलाओं को अधिक से अधिक शिक्षित कर, महिलाओं के स्वतंत्रता और पुरुषों के स्वतंत्रता में कोई अंतर नहीं रहेगा।"[41] इससे व्यक्त होता है कि समाज में स्त्री पुरुष में भेदभाव समस्याओं को हटाया जा सकता है। दूसरा उदाहरण 'रामोणी' इस कहानी में भी लैंगिक भेदभाव की समस्या देखी जा सकती है। जहां पर गांव वाले अपने-अपने कार्यों को समाप्त करके शाम के समय अखड़ा में बैठकर कहते हैं- "बड़ा कठिन है दुनियादारी! जब हमें ही इतनी कठिनाई है तब क्या करेंगे लड़कियां पढ़कर? उन्हें थोड़ी ना दुनिया चलना है, उन्हें तो आराम से घर चलना है, पति का घर चाहे पिता का घर, बस चूल्हा ही तो फूंकना है। पका पका कर खिलाना है और सिंगर-पतार करना है। पतुवा रंग-बिरंगी कंघी बना ही देता है।"[42] उपरोक्त वाक्य को सुनकर मांएं कहती- "मेरी सुगिया बेटी, मेरी नोनी, घर का काम सीखी रहो, तब तुम अपनी सास को खुश रखोगे। सास खुश रहेगी तो पति भी प्यार करेगा लोगों के बीच रहेगा वह मेरी पत्नी बड़ी सुघड़ है। घर चलाना जानती है।"[43] इस प्रकार आदिवासी समाज में लैंगिक असमानता दिखाई देती है।

इस वाक्य से यह भी पता चलता है कि स्त्रियों को सिर्फ चूल्हा-चौका जब करेगी तभी उन्हें सर्वगुण संपन्न माना जा सकता है, यह भी मानसिकता दिखाई देता है।

वर्तमान में हम देखते हैं, लैंगिक असमानता सूचकांक 2023, 13 मार्च 2024 को यूएनडीपी द्वारा अपनी रिपोर्ट में 2022-24 में जारी की गई की लैंगिक असमानता 2022 में भारत 0.437 स्कोर के साथ 193 देश में से 108 वें स्थान पर है। लैंगिक असमानता सूचकांक 2021 में भारत 0.490 स्कोर के साथ 151 देशों में से 122 वें स्थान पर रहा। 2014 में यह रैंक 127 थी जो अब 108 हो गई।'[44]

वास्तव में देखा जा सकता है कि आदिवासी समाज में भी चेतना जग रही है जिससे आदिवासी समाज में स्त्री पुरुष दोनों को शिक्षा प्राप्त करने का स्वतंत्र रूप से अधिकार है। स्त्रियां शिक्षा ग्रहण कर रही है और अपने अधिकारों को सपनों की उड़ान भर रही है। अतः कहां जा सकता है की मुख्य धारा समाज में जो लैंगिक भेदभाव विद्यमान है। जिसके कारण से अपने अधिकारों से वंचित रही स्वयं की अभिव्यक्ति नहीं थी। उन्हें घर के चार दीवारों के भीतर ही कैद रखा गया था। स्वयं की कोई अभिव्यक्ति नहीं थी। वहीं आदिवासी समाज में स्त्रियां स्वतंत्र रूप से सामाजिक, धार्मिक, नियमों से बंधी हुई दिखाई नहीं देती।

संदर्भ सूची

1.मीणा कांता, मीणा हेमराज, भारतीय समाज में अनुसूचित जाति जनजाति एवं पिछड़ा वर्ग का एक विवेचन, प्रथम संस्करण 2014, आदि पब्लिकेशन जयपुर भारत, पृ. संख्या 164

2.पंकज कुमार अश्विनी, 'उपनिवेशवाद और आदिवासी संघर्ष,' पृ. संख्या 14

3.केरकेट्टा रोज, बिरुवार गमछा तथा अन्य कहानियाँ, 'बड़ा आदमी' कहानी, पृ. संख्या-94

4.केरकेट्टा रोज, 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो', 'भंवर' कहानी, पृ. संख्या 19

5.केरकेट्टा रोज, बिरुवार गमछा तथा अन्य कहानियां, 'घाना लोहार का' कहानी पृ. संख्या 43

6.केरकेट्टा रोज, पगहा जोरी-जोरी रे घाटो', 'जिद' कहानी पृ. संख्या-78

7.रोज केरकेट्टा, बिरुवार गमछा तथा अन्य कहानियाँ, 'फिक्स्ड डिपॉजिट' कहानी, पृ. संख्य-70

8.केरकेट्टा रोज, 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो', 'मैना' कहानी पृ. संख्या 102

9.राजेंद्र यादव, हंस, अगस्त 2005, पृ. संख्या 63

10.वर्मा धीरेंद्र, बृहद हिंदी शब्दकोश, खंड- 2 पृ. संख्या 2297

11.उपाध्याय लक्ष्मीकांत मानक विशाल हिंदी शब्दकोश पृ. संख्या 908

12.कुमार सुरेश डॉ. सहाई रामनाथ, ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश पृ. संख्या 344

13.डॉ.मनु प्रकाश, डॉ. मिश्रा कुमार आदित्य सुनीता, हिंदी-हिंदी शब्दकोश, चॉइस इंटरनेशनल नई दिल्ली, पृ. संख्या 232

14.केरकेट्टा रोज, स्त्री महागाथा की महज एक पंक्ति नोशन प्रेस, प्रथम संस्करण 2021, पृ. संख्या 46

15.केरकेट्टा रोज, 'बिरुवार गमछा तथा अन्य कहानियाँ', 'फिक्स्ड डिपॉजिट' कहानी, पृ. संख्या 60

16.गुप्ता रमणिका, आदिवासी अस्मिता का संकट, द्वितीय संस्करण 2015, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. संख्या 11

17.केरकेट्टा रोज, बिरुवार गमछा तथा अन्य कहानियाँ', 'फिक्स्ड डिपॉजिट' कहानी, प्रथम संस्करण 2017, पृ. संख्या 66

18.वही, पृ. संख्या 64

19.वही, पृ. संख्या 72

20.वही, पृ. संख्या 69

21.वही, पृ. संख्या 91

22.डॉ. मुखर्जी एवं अग्रवाल, समाजशास्त्र, संस्करण 2021-22 एसबीपीडी पब्लिकेशन आगरा पृ. संख्या 63

23.वही, पृ. संख्या 63

24.वही, पृ. संख्या 63

25.डॉ. उत्पल के. पटेल, अनुसूचित जनजाति एवं उनकी आकांक्षाएं प्रथम संस्करण 2018 पैराडाइज पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. संख्या 40

26.केरकेट्टा रोज, बिरूवार गमछा तथा अन्य कहानियां, 'घाना लोहार का' कहानी, पृ. संख्या-41

27.वही, 'घाना लोहार का' कहानी, पृ. संख्या 40

28.वही, 'ज़िद' कहानी, पृ. संख्या 77

29.स्वयं द्वारा लिया गया साक्षात्कार

30.केरकेट्टा रोज, बिरुवार गमछा तथा अन्य कहानियां, बड़ा आदमी कहानी, पृ. संख्या 88

31.वही, पृ. संख्या 89

32.केरकेट्टा रोज, 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो', 'दुनिया रंग रंगीली बाबा' कहानी, पृ. संख्या 132

33.वही, पृ. संख्या-136

34.वर्मा कुमार उमेश, बिहार का जनजातीय जीवन, पृ. संख्या 205

35.गुप्ता रमणिका, आदिवासी समाज और साहित्य, प्रथम संस्करण 2015, कल्याणी शिक्षा परिषद जटवाड़ा दरियागंज नई दिल्ली, पृ. संख्या 89

36.केरकेट्टा रोज, पगहा जोरी जोरी घाटो , 'पगहा जोरी जोरी रे' , पृष्ठ संख्या-146

37.डॉ. बन्ने पंडित, हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श प्रथम संस्करण 2014 अमन प्रकाशन कानपुर

38.डॉ. उत्पल के. पटेल, अनुसूचित जनजाति एवं उनकी आकांक्षाएं प्रथम संस्करण 2018 पैराडाइज पब्लिकेशन, जयपुर, पृष्ठ संख्या 108

39.डॉ शर्मा गोपीराम, डॉ. घनश्याम, स्त्री चिंतन सामाजिक-साहित्यिक दृष्टि,प्रथम संस्करण 2020, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पृ. संख्या 23

40.गुप्ता रमणिका, आदिवासी समाज और साहित्य, प्रथम संस्करण 2015, कल्याणी शिक्षा परिषद जटवाड़ा दरियागंज नई दिल्ली, पृ. संख्या 91

41.केरकेट्टा रोज, बिरुवार गमछा तथा अन्य कहानियां, 'रामोणी' कहानी, पृ. संख्या 125

42.वही, पृ. संख्या 125

43.महिला एवं बाल विकास मंत्रालय 14 मार्च 2024, अपरान्ह पीआईबी दिल्ली व्दारा

भाषा एवं शैली

भाषा किसी भी क्षेत्र की भौगोलिक परिवेश को, उनकी संस्कृति को, जीवन शैली को व्यक्त करने का मूल उपकरण के रूप में माना जा सकता है। भाषा एक संस्कृति को दूसरे संस्कृति के साथ साझा करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। भाषा के माध्यम से ही रचनाकार समाज में व्याप्त को कृतियों, विसंगतियों, विश्वास, संस्कृतियों, समस्याओं, कुंठाओं, प्रतिरोधों को तथा अपने अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा भी करता है। इस संदर्भ में अश्विनी कुमार पंकज अपने लेख 'प्रतिरोध की अभिव्यक्ति है आदिवासी भाषाएं' में कहते हैं- "भाषा उतनी ही पुरानी है जितनी चेतन; भाषा व्यावहारिक, वास्तविक चेतन है।"[1] इस प्रकार भाषा के माध्यम से पाठकों में चेतना जगाई जा सकती है।

4.1 भाषा

भाषा अभिव्यक्ति की एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में देखा जा सकता है। प्रत्येक आदिवासी समुदायों की अपनी विशिष्ट भाषा होती है। जिससे उनकी पहचान दृष्टिगोचर होती है। रोज केरकेट्टा की कहानियों में झारखंड में बोली जाने वाली देशज शब्दों का प्रयोग मिलता है। उनकी कहानियों में सरल और सहज भाषा का प्रयोग हुआ है। उनकी भाषा में सादरी भाषा का प्रयोग देखा जा सकता है।

4.1.1 आंचलिक शब्द

ऐसे शब्द जो किसी 'अंचल' यानी क्षेत्र विशेष में प्रयुक्त होते हैं उन्हें आंचलिक शब्द कहा जाता है।

वह इस प्रकार है- कंदरी (रोतडु), खोरपोश, पाको (महुआ का बीज), देमता (चींटी), पोटोम (पोटली), दउरा (टोकरी), धांगर (नौकर), टांड (खेत), भौजाई, बेसवा (वैश्य), टिपा (बूंद), गोतनी (जेठानी), आयो (मां), डुभा (कटोरी), खोखरन (गड़ना), पेलेर-पेलेर (पारदर्शी), घुनुर-घुनुर (धीमी-धीमी), डबकाओ

(उबालना), खिसाना (गुस्साना), सथाला (आराम), पइकरा (वार्षिक भुगतान), चिहुंक (चौक), चरका (गोरा), हेवा (आदत), दारों (मेड़ों), पेरा (निकला), मोटिया (करघें का बुना कपड़ा), बिदौती (बेटी के विवाह में दिया जानेवाला कपड़ा), पतपुरिया (पत्ते में लपेटकर अंगार में पकाना), भाटू (जीजा), सोंटी (छड़ी), डोरा (सांप), चारु (मिट्टी का भात पकाने वाला बर्त्तन), सीठा (फिका), भापल (उबला), जोगा (संभाल), खोंच (फंसकर फटना), आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। देशज शब्दों के अलावा वाक्यों का भी प्रयोग दिखाई देता है- फुलमनी_"के रे, के हेका। हियां राइत खनं जावा जून। जावा घर में सुतबा कटिक देरी।"[2]

लडकियां कहतीं_ "चल गे बंगालिन भौजी, ट्रक आलक।"[3]

बिम्ब शब्द अंग्रेजी के 'इमेज' का हिन्दी रूपान्तर है। इसका अर्थ है, - "मूर्त रूप प्रदान करना।"

कहानियों में बिंबों का भी प्रयोग दिखाई देता है जैसे कि_ 'खोंचाए हुए महुआ ने 'काना कैचरो' फूल गिराया, बच्चों ने चुना और चूड़ी लहटी खरीदने के लिए बेच दिया', 'कपास की जड़ की तरह एकमात्र संतान', 'कोंपल डाली से तोड़कर अलग कर दी गई', ' सूईया पक्षी की तरह सुखा शरीर', उनके पास जीयत खेत है और मझियस है, इसलिए उनका दबदबा है' आदि।

4.1.3 त्योहार

कहानियों में त्योहारों के नाम इस प्रकार है, पस्का पर्व, क्रिसमस, गोमहा, करम जैसे त्योहारों का उल्लेख मिलता है।

इसका उदाहरण 'भँवर' कहानी में देखते हैं। उसका वर्णन इस प्रकार किया गया है- 'चाँद की रोशनी बादलों के कारण कभी चटक हो उठती तो कभी मध्दिम पड़ जाती। स्त्रियाँ, युवतियों और बच्चे खुलकर अपनी उमंग प्रदर्शित कर रहे थे। उपवास रखने वाली युवतियाँ उस दिन का विशेष आकर्षण थी। रामेश्वर बडा़ई के आंगन में करम पूजा का आयोजन था। उन्हीं के आंगन में यह चहल-पहल थी।

लगभग नौ बजे रात्रि में पूजा आरंभ हुई।...लगभग आधे घंटे बाद मालकिन अपनी दोनों बेटियों के साथ पूजा स्थल पर पहुंच गई। बड़ी बेटी ने 'करम डलिया' करम देवता के सम्मुख रखी। तीनों ने बड़ी श्रद्धा से करम देवता को झुककर नमस्कार किया। फिर उठकर अन्य स्त्रियों के समीप जाकर बैठ गई।'[4] इस प्रकार देखते हैं कि करम का त्योहार के दिन स्त्रियाँ उपवास रखती हैं। रात्रि के समय में पूजा रखी जाती है। जहां पर सभी समुदाय के लोग एकात्रित होकर त्योहार मनाया जाता है। इससे ज्ञात होता है कि आदिवासी समुदाय में हर त्यौहार समूह में ही मनाया जाता है।

4.1.4 खाद्य पदार्थ_

प्रत्येक समाज में विभिन्न खाद्य पदार्थ मिलते हैं। आदिवासी समाज में जिन खाद्य पदार्थों का उल्लेख मिलता है वह इस प्रकार है- चिमटी साग, दाल साग, भतुवा साग, नोन, गंगाई, धान, उरद, मड़वा, गेंडूडांग, गेठी, कांदा आदि है।

4.1.5 अंग्रेजी शब्द

रोज केरकेट्टा की कहानियों में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग को भी देखा जा सकता है। वह इस प्रकार है_ फैक्ट्री, ड्राइवर, ऑर्डिनेंस, क्वार्टर, रेलवे स्टेशन, आंटी, मैडम, सर्टिफिकेट, रिपोर्ट, वार्डन, कॉमन रूम, ब्लैकमेलर, पीरियड आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार कहानियों में हिंदी के साथ-साथ झारखंड में बोली जाने वाले शब्दों का प्रयोग हुआ है। कहानियों में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग देखा जा सकता है। उनकी कहानियों में देशज शब्दों के साथ ही हिंदी अर्थ भी दिया गया है जिसके कारण पाठकों को अर्थ समझने में कठिनाई नहीं होती। बोलचाल की भाषा होने के कारण भी कथाओं में वह बोझिलता नहीं है। कहानी संक्षिप्त में कही गई है फिर भी उसकी जो गरिमा, रोचकता है उसमें अलगाव दिखाई नहीं देता है।

4.2 विभिन्न शैलियों का विवेचन

कहानीकार ने विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है अपनी कथाओं को कहने के लिए, वह इस प्रकार है-

4.2.1.किस्सागोई शैली

कथाकार के कहानी संग्रहों में किस्सागोई शैली का प्रयोग किया गया है। किस्सागोई शैली वाचिक शैली होती है, जिसमें पाठकों को किस्सा कही जाती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह 'विमर्श के आयाम' पुस्तक में लिखते हैं- "किस्सागोई की अपनी एक विशिष्ट शैली होती है। किस्सा करने वाला यह मानकर चलता है कि उसके सामने श्रोता है, ऐसे श्रोता जो किसी भी वर्ग की हो सकते हैं इसलिए उसका अंदाज सर्वसाधारण को प्रभावित एवं आकर्षित करने वाला होता है।"[5] इसका उदाहरण इस प्रकार है- "2 वर्ष पहले दिनी अपनी माँ के साथ कोलकाता गई थी। वहां उसके चाचा रहते थे, तब वह अकेले थे। माँ अपने देवर की शादी को अंतिम रूप देने के लिए गई थी। उसके बाद शादी हो गई। उस समय चाचा ने उसके लिए एक फूलदार फ्रॉक खरीद दिया था। फूलदार फ्रॉक पहन कर दिनी जतरा गई। कई शादियों में शामिल हुई। चर्च गई। कई जगह फूलदार फ्रॉक पहनकर फिरी। तब उसे लगता था कि सभी लोग उसे देख रहे हैं। उसे लगता कि लोग उसकी प्रशंसा कर रहे हैं। फूलदार फ्रॉक में दिनी स्वयं को बहुत सुंदर मानने लगी थी। उस समय दिनी 6 वर्ष की थी।"[6]

इससे स्पष्ट होता है कि रोज जी की कहानियों में सहजता, सरलता है। आदिवासियों के जीवन शैली भी इन्हीं गुणों के अंतर्गत आता है और यह तत्व कहानियों में आना स्वाभाविक है यह कहा जा सकता है। राणेंद्र इस संदर्भ में कहते हैं- "इस कथा संग्रह से गुजरते हुए आदिवासी समाज की वाचिक परंपरा किस्सागोई का आस्वाद अनायास हमारे मन-मस्तिष्क को भिगोता है। इन कहानियों में लेखिका ने शिल्प के लिए कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं किया है। कथ्य के साथ सदा-सा

शिल्प सहज रूप से आया है। एक नैसर्गिक का आदिवासी सादगी मौलिकता सहजता के साथ आया है।"[7]

4.2.2.वर्णात्मक शैली

रोज केरकेट्टा की कहानियों में वर्णन वर्णनात्मक शैली का भी प्रयोग मिलता है। इसका उदाहरण 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो' कहानी में स्कूल का वर्णन करते हुए लेखिका लिखती हैं_ "जमादोहर गिरजा टोली का स्कूल घर चट्टान पर बना है। बीस वर्ष पहले तक इस स्कूल में तीन चार कोर्स दूर से बच्चे पढ़ने आते थे। स्कूल के चारों ओर भदरा जैसा था। उसी के आसपास सीध, कोरोय और केंदु के पेड़ भरे पड़े थे।"[8] दूसरा उदाहरण है 'मैग्नोलिया पॉइंट' कहानी में देखते हैं। वह इस प्रकार है_"पहाड़ों के ऊपर आकाश चटक नीला। घाटियों में पलाश के फूलों और कुसुम गाछ के नवपल्लवित लाल पत्तियों का रंग छाया हुआ। चीड़ और जाऊं के पेड़ों के बीच-बीच में सखुआ, कुसुम, महुआ, आसन सीधा ढ़वठा के पेड़ों के कारण मिश्रित हरा रंग।"[9]

4.2.3.संवादात्मक शैली

कहानियों में संवादात्मक शैली का भी प्रयोग दिखाई देता है। संवाद के माध्यम से कहानियों में सजीवता दिखाई देती है। इसका उदाहरण इस प्रकार है_

कलावती- "कलेजी फोक्स सबको पतपुरिया बनाएंगे भाटू। आप तो परदेस में इसका स्वाद भूल गए होंगे।"

गणेश- "याद दिला दी मैया तुमने उसे स्वाद की वहां तो बस वही लेढ़ी मुर्गी। वह जैसा बैठी रहती है, वैसा ही खाकर बैठे रहो। इसलिए हम यह वह सब नहीं खाते। हां दूध-दही थोड़ा मिल जाता है।"[10]

दूसरा उदाहरण छोटी बहू कहानी से जो इस प्रकार है_

बहु, ‘आपके बेटे की बातें तो आपने सुन ली ना!’

पति, ‘पूछ ही लिया तो मैंने कौन सी गाय मार दी बाप रे इसका उफडना!’

पत्नी, ‘तुम बताओ मैं क्या कहा है?’

पति, पिता नहीं है। परिवार में उनकी जगह पर मैं हूं। घर में कुछ भी होता है। बाहर तो मुझे ही सुनना पड़ता है। अगर मैं ही घर की बातों को नहीं जानूंगा, नहीं सुनूंगा तो काम कैसे चलेगा? मेरी जवाब दे है इस घर के प्रति है।’[11]

इस प्रकार संवादात्मक शैली कहानियों को जीवंतता प्रदान करती है। इसी के अतिरिक्त कहानियों में मुहावरे तथा कहावतों का भी प्रयोग हुआ है।

4.2.4 पत्रात्मक शैली

पत्रात्मक शैली का प्रयोग तब किया जाता है जब कोई पत्रों के माध्यम से संवाद करते हैं। डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल इसके संदर्भ में कहते हैं- ‘‘पत्रात्मक शैली के विविध स्वरूप हिंदी कहानी के इतिहास में इस तरह के शैली की सुदीर्घ परम्परा रही है।’’[12] इस प्रकार देखा जा सकता है कि पत्रात्मक शैली की लंबी परंपरा रही है। रोज रोज केरकेट्टा की कहानियों में भी हमें यदा कदा पत्रात्मक शैली का प्रयोग दिखाई देता है। उसका उदाहरण 'लत जो छूट गई' इस कहानी के माध्यम से देखते हैं। जहां पर शांति और प्रमोदिनी किशोरावस्था में है। उनका मन चंचल से भरा हुआ है। खूब शरारत करती हैं। ऐसी ही समय बिताते हुए वह कॉलेज पहुंची। वहां पर उनकी जो शरारतें थी, वह अधिक बढ़ गई। वहां उन्हें पता चलती है कि उनकी एक सीनियर है जो की बहुत ही गंभीर स्वभाव की है और इसी के साथ वह खूबसूरत भी है। उसे किसी रंग रूट अफसर उसके प्रति आकर्षित हैं यह जब पता चलता है। शांति और प्रमोदिनी अप्रैल फूल बनाने के लिए रंगरूट अफसर को दोनों पत्र लिखते हैं। उस पत्र में वो दोनों लिखते हैं कि 'मुझे पता चला है कि आप मुझे मिलना चाहते हैं किंतु मैं अकेली नहीं दोस्तों के साथ रहूंगी। आप स्थान और तिथि तय करें।’ इस प्रकार लिखकर प्रमोदिनी और शांति पत्र डाल देते हैं और

ठीक एक अप्रैल को वह पत्र वापस रंगरूट द्वारा लिखी जाती है, जिसमें लिखा था_

'तस्वीर तेरी दिल मेरा

बहला न सकेगी।

सीने से लगा लूंगा,

तो वह खामोश रहेगी।'

उसके नीचे लिखा था 20-4-60- 11:00 बजे स्वीट पैलेस।'[13]

इसका दूसरा उदाहरण है, जब मैट्रिक पास बाबू कॉलेज में पढ़ने आते थे। उनकी जो पत्नियां थी वह उन्हें पत्र लिखती थी। शांति और प्रमोदिनी लत बढ़ती गई। अब वह बाबों के पत्र भी चुरा कर पढ़ने लगी थी। यह जो बाबू हैं, वह अपनी पत्नियों पर गर्व करते थे। बाबू जो थे गंगा का मैदानी इलाका से संबंध रखते थे। जब भी डाक चिट्ठियों को लेकर आते तो वह नोटिस बोर्ड में लगाकर चला जाता था। दूसरे दिन ही उन्हें पत्र मिलती थी। अब प्रमोदिनी और शांति ने नोटिस बोर्ड को अपना निशाना बना लिया। उन्होंने एक लिफाफा उठाया पत्र में संबोधन था_ 'प्राणनाथ' अंत था , 'आपके चरणों की दासी!' जो विशेष था वह इस प्रकार है अंत में फूल सहित एक डाली बनी थी और लिखा था 'फुल गमकना' यह सुनकर दोनों ठहाका मारकर हंसने लगती।'[14]

तीसरा उदाहरण है जब शांति और प्रमोदिनी अपने ही छात्रावास की लड़कियों की पत्र को पढ़ने के लिए जुगाड़ लगती है। कॉलेज की लड़कियों के लिए प्रेम पत्र आते थे इसलिए वॉर्डन जो है उन सभी लड़कियों की पत्र को पढ़कर उन्हें डांट लगाती है लेकिन उन पत्रों को वह फडती नहीं थी। जब यह बात शांति और प्रमोदिनी को पता चली तो वे दोनों उन पत्रों को पाने के लिए जुट गए। जब वॉर्डन अपने घर चली गई तब उन दोनों ने वॉर्डन के कमरे में जाकर वे पत्र ढूंढें हैं और उन सभी पत्रों में इस प्रकार लिखता था_

'लिखता हूं जिगर खून से

स्याही ना समझना

मरता हूं तेरे इश्क पे

मजनू ना समझना।'

किसी में लिखा होता 'जाए तो जाए कहां समझेगा का कौन यहां।'[15] इस प्रकार लेखिका ने अपनी कहानियों में पत्रात्मक शैली का प्रयोग करते हुए कहानियों की रोचकता को पाठकों के सामने रखा है।

इसका दूसरा उदाहरण ' बिरुवार गमछा' इस कहानी में देखे जा सकती है। जहाँ पर माँ अपने बेटे गणेश को मैट्रिक पास करवाता है। उसके बाद वह पंजाब, गुजरात जाता है। जहाँ पर वह गोदाम मिल के गोदाम में दरबार की ड्यूटी करता है। एक वर्ष बाद वह अपने गाँव वापस जाता है। वापसी के दौरान वह अपनी पत्नी और बच्चे को लेकर गुजरात आता है। वहीं पर वह बस जाता है। इसी दौरान गुजरात आग की चपेट में आ जाता है। इसके चलते गणेश विचलित हो जाता है। सुबह की उसकी पत्नी जिद करने लगती है कि उसे वापस गाँव जाना है। लेकिन शहर में काम करने से पेट तो भर रहा है। यह सोचकर गणेश वहीं रुक जाता है। वह अपने पिता को पत्र लिखता है, जो इस प्रकार है-

''मैं अपने महान दादाजी को जोहार करता हूँ आज समझता हूँ कि वह कितनी दूरदर्शी थे। उन्होंने कहा था कारखा लुंडरी हमारी पहचान है, ...पिताजी मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि थोड़ा समय निकालकर ऐसा गमछा बनते रहे यहां उनकी मांग है। मैं अपने चीक बडा़ईक होने को अपनी खुशनसीब मानता हूँ। हमारा गमछा अनमोल है, मैं आपका बेटा होने और दादाजी का पोता होने का गर्व करता हूँ। आपको और माँ को हम सब जोहार करते हैं। आपका बेटा गणेश।''[16]

इस पत्र के माध्यम से देखते हैं कि जो आदिवासी है वह अपनी परंपरा और अपनी संस्कृति को त्यागना नहीं चाहते बल्कि उसे समृद्ध बनाने के लिए हर कदम पर प्रयास करते हैं। उसी के साथ पत्र को अंत करते हुए गणेश के आंखों से दो बूंद पत्र में टपक जाते हैं। गणेश के पिता उस पत्र को चूम लेते हैं।

4.3 मुहावरा

मुहावरा का अर्थ इस प्रकार है-

मुहावरा ऐसा वाक्यांश है जो रचना में अपना विशेष अर्थ प्रकट करता है। मुहावरों में भावगत सौंदर्य का विशेष महत्व होता है। इसके प्रयोग से भाषा सरल, सहज, रोचक एवं प्रभावपूर्ण बन जाता है। मुहावरों का मूल रूप में परिवर्तन नहीं होता अर्थात किसी भी पर्यायवाची शब्द का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। मुहावरा का शाब्दिक अर्थ न लेकर इसका भावार्थ ग्रहण किया जाता है। मुहावरा को वग्धरा भी कहा जाता है।

मुहावरे कुछ इस प्रकार हैं_ 'काठ मारना', 'सब्र का बांध टूटना', 'आंखों के सामने अंधेरा छा जाना', 'धज्जियां उड़ाना', 'खिचड़ी पकाना', 'हाथ पैर मारना', 'सन्नाटा छा जाना', 'उंगली चाटना', 'पट्टी पढ़ाना', 'पैंतरा बदलना', 'ताना मारना', 'ठेंगा दिखाना', 'नक्शे कदम पर चलना', 'ताल ठोकना', 'कलेजा फटना', 'आंखों की नींद उड़ना', 'पैरों तले जमीन खिसकना', 'उंगली चटना' आदि।

उदाहरण इस प्रकार है-

1.कहाँ जतरा जाने की तैयारी करना चाह रहा था दंपति और अब उनके पैरों तले की जमीन खिसकने लगी।

2.बेटी का स्पर्श पा कर माँ के सब्र का बांध टूट गया।

3.दावत की चर्चा करते हुए वे अनायास अपनी उंगलियाँ चाटने लगते थे।

4.चंद्र की बहू ने अपने ससुर को पट्टी पढ़ना आरंभ किया।

5.तो मुझे ठेंगा दिखाओगी? मैं कमाता हूँ, तुम सब खाते हो बस, और कुछ नहीं।

4.4 कहावत

कहावत का अर्थ इस प्रकार है-

कहावत उसे कहा जाता है जो लोग जन की उक्ति होती है या जन-कथन होती है। कहावत को लोकोक्तियां भी कहा जाता है। लोकोक्तियां लोगों के अनुभव तथा लोक जीवन की किसी घटना से जुड़ी होती है। लोकोक्तियां छोटी होती है किंतु उनके भाव अधिक प्रभावित होता है। इसके प्रयोग से रचनाओं में भागवत विशेषताएं आती है। इसे सरल शब्दों में कहे तो 'जो बात लोकजन में प्रचलित होती है उसे कहावत कहते हैं।

कहावत कुछ इस प्रकार है_

'भगवान के घर देर है अंधेर नहीं।' 'घुन लगी लकड़ी में पलट देना।' 'भेड़िए की मौत आई है।' 'चीटियों के पर निकल रहे हैं, जल्दी ही पर खतरनाक पड़ेगा।' 'संतोष धन सब धन से बड़ा है।' 'छोटी जात वाली के पेट का।' 'सामने खाई पीछे कुंआ।' 'बड़ा वाला आया है।' 'नीच जात की औलाद।' 'मेरी बिल्ली हम ही से मम्याऊं।' 'कौन सी गाय मार दी।' 'ठठन खेत ना जोते बने ना खोदते बने।' 'कलेजा का टुकड़ा होना।' 'दो थाली जब टकराते हैं तभी आवाज होती है।' 'तू-तू मैं-मैं करना।' आदि कहावतों का प्रयोग हुआ है जिसके कारण कहानी अधिक रोचक बनती जाती है।

उदाहरण के लिए-

1.लोग कहने लगे नीच जात की औलाद ऐसा ही तो करेगा!

2.पूछ लिया तो मैंने कौन सी गाय मार दी? बाप रे इसका उफड़ना!

3. कालीचरण बोला, 'मेरी बिल्ली हम हीं से म्याऊँ? तुम सबको मैं पैदा किया है, मैंने।

4.गरीब की झेंप मिटाने के लिए भले हम कह लें कि संतोष धन सब धन से बड़ा है, इसके सामने सब धूरि समान है।

5. विलासिता ने उसकी उनके शरीर को चुन लगी लकड़ी में पलट दिया था।

4.5 गीत

आदिवासी साहित्य वाचन साहित्य कहलाता है। आदिवासी अपनी भावनाओं को गीतों को गाकर व्यक्त करते हैं। आदिवासियों में सामुदायिकता के कारण उनकी परंपरागत गीत गायन की परंपरा रही है। शादी, त्योहार, विवाह,जन्म, अंतिम संस्कार में अलग-अलग तरह के गीत गाए जाते हैं। आदिवासी कहानियों की एक विशेषता यह भी है कि कहानियों के बीच-बीच में प्रचलित लोकगीतों का प्रयोग हुआ है। जो इस प्रकार है_

रूपु की मैना गाती_

टुप टापु टुप टड़ब टड़ब टुप टापु टपु टड़ब टड़ब

गाड़ा गितिल मैना दो-दो गिरा।

(नदी की रेत मैना तप रही है।)

फिलमोन की मैना गाती_

ददा रे ददा जोई दादा रे दादा जोई,

पोंयरी ओबबकायेम',

हंसली ओबबकायेम,'

चंदोवा ओबबकायेम,'

ददा जोई इञअथोङगा।"[17]

(दादा रे दादा, पायल बनवा देना, हंसली बनवा देना चंदन बनवा देना मेरे लिए)

यह गीत तब गाया है, जब लड़की की तीन आदमियों द्वारा उसका बलात्कार करने की कोशिश की जाती है। तब रूपु और फिलमोन की मैना उड़ कर जंगल में आती है और यह गाना गुनगुनाती है, जिसके कारण जो बलात्कार होने वाली लड़की

वह बच जाती है। यह आवाज सुनकर बलात्कारियों को लगता है कि चरवाहों का झुंड उसी तरफ आ रहे हैं फिर वहां से वे भाग जाते हैं और यह गीत सुनकर जो है फिलमोन और रूपु जल्दी से दौड़कर उस लड़की की मदद करने के के लिए भागते हैं उसी वक्त जो तीन आदमी थे वह आवाज सुनकर पगडंडियों की ओर भाग रहे हैं, किंतु भागते हुए चारों एक दूसरे से टकराकर घायल हो जाते हैं और जो तीन आदमी थे उनके घुटने, कोहानियां, माथे और उंगलियां फूट जाती है जिसके कारण वह हाय हाय करते हुए वहां से चले जाते हैं। किंतु जो असली साजिश करता था वह बच निकलता है।

इससे ज्ञात होता है कि आदिवासी समाज में जानवरों के प्रति लगाव दिखाई देता है। वह उन्हें अपनी सुरक्षा हेतु गीत का सहारा लेते हैं जिसके द्वारा वह अपने आप की रक्षा संकट के समय में तथा अपने समाज की रक्षा करने में सक्षम होते हैं।

4.6. विवाह

आदिवासी समाज में में विवाह के अवसर पर जीत गई जाती है जो इस प्रकार है-

"मुनगा दारू ओनोब नो थे अपा,

ओः दुरा किनभर पतर योता।।

बेटी बिदा तेरोब नो रे अपा,

ओः दुरा किनभर ञेलोङ योता।।"[18]

(तुमने मूनगे का पेड़ लगाया। पिता, घर दरवाजा, आंगन प्रकाश से भर गया। तुमने बेटी बिदा किया। पिता, घर द्वार आंगन अंधकार से भर गया।)

यह गीत विवाह के अवसर में गाई जाती है। इस गीत से यह पता चलता है कि आदिवासी समाज में स्त्रियों को घर परिवार में समान अधिकार होती है । इस गीत से विदित होता है कि घर में जब बेटियां पैदा होती हैं तो आंगन प्रकाश से भर जाता है। जब बेटियां उस घर से विदा होती है तो घर अंधकार से भर जाता है। इस प्रकार

लेखिका ने इस लोकगीत के माध्यम से आदिवासी समाज में स्त्रियों की कितनी अहमियत उसे बताने का प्रयास किया है। इस गीत के माध्यम से यह भी पता चलता है कि आदिवासी समाज में अलग-अलग अवसरों के लिए अलग-अलग लोकगीत गाए जाते हैं।

तीसरा गीत इस प्रकार है-

“चांद जे उगी गेल तिले-तिल, तिले-तिले…हो होरे चंदा मोर, गहन लागी गेलयं।”[19] **यह जो गीत है यह तानिस और जोसफा के प्रेम संबंध में अलगाव दिखाई देता है तब तानिस का दिल भर उठता है तब वह यह गीत धीमी स्वर में गाता है। यह जो गीत है प्रेमी अपनी प्रेमिका से बिछड़ने पर यह जीत गायी जाती है।** इस प्रकार कहानियों में गीतों के माध्यम से उनकी परंपरा संस्कृति जीवन शैली का ज्ञात होता है।

चौथ गीत इस प्रकार है-

“माया से बुलाबे होले, तोर दूरा आबो जाबो, माया से बुलाबे होले…।”[20] यह जो गीत है यह देवर और भाभी में जो नोक झोंक वाली रिश्ता होती है उसके संदर्भ में कहा गया है, इसका अर्थ है, 'माया से अगर आप मुझे बुलाएंगे तो मैं आपके घर आता जाता रहूंगा।’

निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि रोज केरकेट्टा की कहानियों की भाषा हिंदी के साथ-साथ झारखंड के ग्रामीण या देशज शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है। उसी के साथ अंग्रेजी के कुछ शब्द भी दिखाई देते हैं। संवाद कि यदि बात करें तो उनके संवाद छोटे-छोटे हैं जिसके कारण कहानियों में बोझिलता दिखाई नहीं देती। कहानियों में मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग भी मिलता है। इसके अतिरिक्त कहानियों के बीच-बीच में गीतों का भी प्रयोग हुआ है जो कहानियों को जीवंतता प्रदान करती है।

संदर्भ सूची

1.लगुन अनुज, आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व प्रतिरोध, प्रथम संस्करण 2015 पृ. संख्या 113

2.केरकेट्टा रोज, 'बिरूवार गमछा तथा अन्य कहानियां', 'मां' कहानी, पृ. संख्या-95

3.केरकेट्टा रोज, 'बिरूवार गमछा तथा अन्य कहानियां', रामोणी कहानी, पृ. संख्या-130

4.केरकेट्टा रोज,पगहा जोरी- जोरी रे घाटो', भँवर कहानी, पृ. संख्या 13

5.सहाय संजय, जनचेतना का प्रगतिशील कथा मासिक, वर्ष 50, अंक-01, फरवरी 2016, पृ. संख्या 86

6.केरकेट्टा रोज ,बिरूवार गमछा तथा अन्य कहानियाँ, 'फ्रॉक' कहानी, पृ. संख्या 48

7.पगहा जोरी-जोरी रे घाटो कहानी संग्रह की भूमिका

8.केरकेट्टा रोज, जोरी- जोरी रे घाटो', पगहा जोरी-जोरी रे घाटो कहानी, पृ. संख्या 142

9.केरकेट्टा रोज, बिरूवार गमछा तथा अन्य कहानियां, 'मैग्नोलिया पॉइंट' कहानी, पृ. संख्या 117

10.केरकेट्टा रोज, बिरूवार गमछा तथा अन्य कहानियाँ, 'बिरूवार गमछा' कहानी, पृ. संख्या-133

11.केरकेट्टा रोज, पगहा जोरी-जोरी रे घाटो, 'छोटी बहू' कहानी, पृ. संख्या 46

12.लाल, डॉ. लक्ष्मी नारायण, हिंदी कहानियों की शिल्प विधि का विकास 1996, पृ. 234-235

13.केरकेट्टा रोज, पगहा जोरी जोरी रे घाटो,' 'लत जो छूट गई' कहानी, पृ. संख्या 93

14.वही, पृ. संख्या 95

15.वही, पृ. संख्या 966

16.केरकेट्टा रोज ,बिरूवार गमछा तथा अन्य कहानियाँ, 'बिरुवार गमछा' कहानी, पृ. संख्या 143

17.वही, 'मैना' कहानी पृ. संख्या 99

18.वही, 'भाग्य' कहानी पृ. संख्या 76

19.वही से 'महुआ गिरे सगर राति' कहानी पृ. संख्या 90

20.केरकेट्टा रोज, बिरूवार गमछा तथा अन्य कहानियां, 'घाना लोहार का' कहानी, पृ. संख्या 38

उपसंहार

आदिवासी विमर्श वर्तमान में ज्वलंत मुद्दे के रूप में उभरा है। 60 के दशक से आदिवासी साहित्य की शुरुआत मानी जा सकती है। आदिवासी भारत के मूलनिवासी के रूप में जाने जाते हैं। आदिवासियों को अनेक नाम से संबोधित किया जाता है- जैसे की बर्बर, जंगली, आदिम, असभ्य, असुर आदि। आदिवासियों की लंबी मौखिक परंपरा रही है। वर्तमान में आदिवासी तथा गैर आदिवासियों द्वारा साहित्य लिखा जा रहा है। कुछ आदिवासी कहानीकार इस प्रकार हैं- रमणिका गुप्ता, रोज केरकेट्टा, वंदना टेटे, अनुज लुगुन, वोल्टर भेंगरा 'तरुण', पीटर पॉल एक्का, हरिराम मिणा, महुआ माजी, आदि। आदिवासियों का इतिहास यदि देखा जाए तो वे सदियों से संघर्ष करते आ रहे हैं। आजादी से पूर्व मुगलों द्वारा आदिवासियों की भूमि पर 'परंपरागत सामूहिक अधिकार' था उसे खत्म कर 'व्यक्तिगत' कर दिया गया जिसके कारण उनकी जमीनें उनसे छीन गई। जब अंग्रेजी शासन व्यवस्था की शुरुआत हुई तो उन्होंने आदिवासियों पर अधिक कर लागू कर दी और जो जमीन थी उन्हें साहूकारों, ब्राह्मणों, जमींदारों को सौंप दी गई जिसके कारण वह आगे चलकर मालिक बन गए और आदिवासियों को अपने ही जल, जंगल, जमीन, नदी, पहाड़ियों से बेदखल कर दिया गया, जिसके कारण कालांतर में अनेक आंदोलन चलाए गए जैसे कि सिद्धू कान्हो के नेतृत्व में 'संथाल हूल परगाना', बिरसा मुंडा के नेतृत्व में 'उलगुलान' जैसे आंदोलन किए गए।

स्वतंत्रता के पश्चात सरकार ने विकास के नाम पर आदिवासियों के लिए अनेक कानून बनाए और कानून में संशोधन करके उनके जमीनें हथियाने के लिए अनेक षड्यंत्र बनाए गए जिसके कारण लाखों आदिवासियों को विस्थापन तथा पलायन जैसे समस्यों का सामना करना पड़ रहा है। वर्तमान में उनकी जो समस्याएं हैं उन्हें हल करने में सरकार असफल रही है। आज भी आदिवासियों को उतना ही संघर्ष करना पड़ रहा है जितना वो पहले से करते आ रहे हैं। आदिवासियों को पिछड़ा और असभ्य कहकर उनका सदैव शोषण होता आया है चाहे आर्थिक हो,

शारीरिक हो, सामाजिक हो, या राजनीतिक हर क्षेत्र में उनका शोषण जारी है। औद्योगीकरण ने आदिवासियों को काफी हद तक प्रभावित किया है। इसके कारण आदिवासी शहरों की ओर पलायन करने के लिए मजबूर हो गए। जहां मुख्यधारा समाज द्वारा उनका शोषण होता हुआ दिखाई देता है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष समान रूप से शोषण का शिकार होते हुए दिखाई देते हैं। इन्हीं शोषणों के विरुद्ध में आज कई आदिवासी लेखक, लेखिका अपनी कलम चला रहे हैं, जिसके माध्यम से आदिवासी समाज में चेतना लाने का प्रयास किया जा रहा है। ऐसे ही लेखिका है रोज केरकेट्टा जो आदिवासी साहित्य की वरिष्ठ लेखिका है। हिंदी तथा खड़िया भाषा की विदुषी। अपनी कहानियों के माध्यम से आदिवासी समाज की संस्कृति, जीवन दर्शन, रहन-सहन, परंपराएं, मान्यताओं, विसंगतियों, कुरितियां, समस्याओं को उजागर करती है। उनकी कहानियों में स्त्री सशक्तिकरण तथा प्रतिरोध की भावना भी दिखाई देता है। ऐसे अनेक समस्याएं भी दिखाई देती है जहां पर मुख्यधारा समाज के संपर्क में आने से उनमें पितृसत्तात्मक विचारधारा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत की गई है। शोध विषय 'रोज केरकेट्टा की कहानियों में स्त्री संघर्ष' को सुनिश्चित, नियोजन करने के लिए मैंने इसे चार अध्यायों में विभाजित किया है। प्रथम अध्याय में आदिवासी शब्द की व्युत्पत्ति के संदर्भ में अलग-अलग विद्वानों ने अपने जो मत रखे हैं उसे उद्धारित किया गया है। उसके बाद आदिवासी विद्वानों द्वारा उसके अर्थ तथा विभिन्न शब्दकोशों में दी गई अर्थ को बताया गया है। जिससे यह ज्ञात होता है कि आदिवासी धरती के मूल निवासी हैं। जिन्हें नागर संस्कृति से दूर जंगलों, पहाड़ियों में निवास करते आ रहे हैं उन्हीं को आदिवासी कहा गया है। इसी के साथ उनकी अलग संस्कृत, भाषा, परंपराएं हैं और किसी विशिष्ट भू-भाग के प्राचीनतम निवासी के रूप में जाने जाते हैं। अंत में आदिवासी कहानियों की विशेषताओं पर उदाहरण सहित उन्हें स्पष्ट किया है जिसके माध्यम से उनकी प्रकृतिय के संबंध में पता चलता है।

दूसरा अध्याय 'रोज केरकेट्टा की कहानियों में आदिवासी स्त्री संघर्ष' इस विषय में स्त्रियों की संघर्ष पर प्रकाश डाला गया है जैसे की पितृसत्तात्मक समाज का विरोध करते हुए दिखाई देती है तथा स्वर्ण जाति द्वारा आदिवासियों की अवहेलना भी

मुखरित होती है। इसी के साथ आदिवासी समाज में स्त्रियां शिक्षा के लिए भी संघर्षरत दिखाई देती है। उनके अनेक कहानियों में स्त्री सशक्तिकरण का चित्रण उभर कर सामने आता है। यह हम इसलिए कह सकते हैं क्योंकि रोज केरकेट्टा स्वयं समाजसेवी होने के कारण महिलाओं की उत्थान को प्रोत्साहन करती है। उसी के साथ स्त्रियों के संघर्षों को भी पाठकों के सामने उजागर करती है।

तीसरा अध्याय 'रोज केरकेट्टा की कहानियों में चित्रित समस्याएं' इस अध्याय में कहानियों में व्याप्त समस्याएं आई हैं। जो इस प्रकार है- स्त्री शोषण की समस्या, विस्थापन तथा विस्थापन की समस्या, जातिगत समस्या, औद्योगीकरण की समस्या, लैंगिक भेदभाव की समस्या, आदि का विस्तार पूर्वक और उदाहरण सहित विश्लेषण किया गया है। जिससे उनकी विभिन्न समस्याओं के संबंध में पता चलता है।

चौथा अध्याय में कहानियों में प्रयुक्त भाषा एवं शैली पर बात की गई है। उनकी कहानियों में झारखंड में बोली जानेवाली देशज शब्दों का प्रयोग मिलता है। उनकी भाषा सरल तथा सहज है। जगह-जगह पर सादरी भाषा का प्रयोग दिखाई देता है जैसे कि दउरा, कूमनी, डोरी आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसी के साथ हिंदी का सम्मिश्रण भी दिखाई देता है। कहीं-कहीं पर सादरी भाषा में वाक्य का प्रयोग मिलता है। कहानियों में अलग-अलग शैलियों का भी प्रयोग किया गया है जैसे कि वर्णनात्मक शैली, संवादात्मक शैली, पत्रात्मक शैली, किस्सागोई शैली का प्रयोग देखा जा सकता है, जिसके कारण कहानी और भी सजीव और जीवंत बना रहता है। इसी के साथ मुहावरों तथा कहावतों का भी इस्तेमाल किया गया है जैसे कि 'पैरों तले जमीन खिसकना', ‘मेरी बिल्ली हम ही से म्याओ’, ‘काठ मारना’, ‘आंखों के सामने अंधेरा छा जाना’, आदि। कहावतें कुछ इस प्रकार मिलते हैं ‘तू-तू मैं-मैं’ करना’, ‘छोटी जात वाली के पेट का’, ‘सामने खाई पीछे कुंआ’, ‘कलेजा का टुकड़ा होना’, ‘कौन सी गाय मार दी’ आदि कहावतों का प्रयोग मिलता है। कथाकार की कहानियों में गीतों का भी प्रयोग उद्धृत होता है जो इस प्रकार है- “चांद जे उगी गेल तिले-तिल, तिले-तिले…हो होरे चंदा मोर, गहन लागी गेलयं।” इस प्रकार गीतों का प्रयोग दिखाई देता है। कहानियों की विशेषता यह भी है सादरी

भाषा के साथ ही देशज शब्दों का हिंदी में अनुवाद दिखाई देता है तथा गीतों के भी अनुवाद बताया गया है। जिसके कारण कहानियों में बोझीलता नहीं है किंतु रोचकता और सरलता विद्यमान है। कहानियों में संवाद भी छोटे-छोटे हैं तथा कहानियां भी संक्षिप्त लिए हुए हैं फिर भी रोचकता से भरपूर है।

इन कहानियों के माध्यम से यह निष्कर्ष निकलता है कि आदिवासी स्त्रियों का संघर्ष मुख्यधारा समाज की स्त्रियों से भिन्न दिखाई देता है। आदिवासी अपना जीवन सरलता और सहजता के साथ बिताते हैं लेकिन उनका जीवन यापन श्रम पर आधारित होता है। आदिवासी स्त्रियां वर्तमान में शिक्षा ग्रहण कर रही हैं तथा अपने अस्तित्व, अस्मिता, पहचान को बरकरार रखने के लिए संघर्षरत है और यही संघर्ष रोज करके की कहानियों में दिखाई देता है। उनकी कहानियों में प्रतिरोध का स्वर भी विद्यमान है। वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रही हैं और प्रत्येक कहानी में स्त्रियों को अबला स्त्री के रूप में चित्रित नहीं किया गया है। मुख्यधारा समाज आदिवासियों को आज भी उनके अधिकारों से वंचित ही रखे जाने के लिए अनेक पैंतरा अपनाते हैं जिसके कारण आदिवासी समाज कोप पग-पग पर संघर्ष करना पड़ता है। स्त्रियों को केवल उपभोक्ता की वस्तु के रूप में देखा जाता है। आदिवासी स्त्री हो या पुरुष मुख्यधारा समाज कभी उन्हें अपना वर्चस्व स्थापित करने नहीं देना चाहते और उन्हें बराबरी का दर्जा भी देना नहीं चाहते फिर भी आदिवासी समाज अपने आप को ऊपर उठा रहे हैं और धीरे-धीरे आदिवासी समाज में परिवर्तन दिखाई देने लगा है और यही संघर्ष भविष्य के एक सशक्त मार्ग प्रशस्त करेगी।

<u>संदर्भ सूची</u>

आधार ग्रंथ सूची

*करकेट्टा रोज, पगहा जोरी जोरी रे घाटो, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2023

*केरकेट्टा रोज, बिरुवार गमछा तथा अन्य कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम सस्करण 2017

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) डॉ. बन्ने पंडित, हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श, प्रथम संस्करण 2014, अमन प्रकाशन कानपुर
2) कुवर भाई दास गौतम, आदिवासी लोक साहित्य, प्रथम संस्करण 2012
3) डॉ. उप्रेति हरिश्चंद्र, भारतीय जनजातियां: संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
4) डॉ. एस के सैनी, राजस्थान के आदिवासी, यूनीक ट्रेडर्स, प्रथम संस्करण 2003
5) कृष्ण, विजय लखनपाल, सामाजिक मानवशास्त्र, विद्या विहार देहरादून, प्रथम संस्करण 1958

6) कुमार दीक्षित, डॉ. ध्रुव, समाजशास्त्र अनुसूचित जनजाति, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी इंदौर

7) मीणा गंगा सहाय, आदिवासी चिंतन की भूमिका, प्रथम संस्करण 2017, अन्य प्रकाशन नई दिल्ली

8) गुप्ता रमणिका, आदिवासी कहानी संचयन, साहित्य अकादेमी, प्रथम संस्करण 2019

9) गुप्ता रमणिका, आदिवासी समाज और साहित्य, प्रथम संस्करण 2015, कल्याणी शिक्षा परिषद जटवाड़ा दरियागंज नई दिल्ली

10) डॉ शर्मा गोपीराम, डॉ. घनश्याम, स्त्री चिंतन सामाजिक-साहित्यिक दृष्टि,प्रथम संस्करण 2020, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली

11) डॉ. उत्पल के. पटेल, अनुसूचित जनजाति एवं उनकी आकांक्षाएं प्रथम संस्करण 2018 पैराडाइज पब्लिकेशन, जयपुर

12) डॉ. मुखर्जी एवं अग्रवाल, समाजशास्त्र, संस्करण 2021-22 एसबीपीडी पब्लिकेशन आगरा

13) लाल, डॉ. लक्ष्मी नारायण, हिंदी कहानियों की शिल्प विधि का विकास 1996

14) लगुन अनुज, आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व प्रतिरोध, प्रथम संस्करण 2015

15) डॉ शर्मा गोपीराम, डॉ. घनश्याम, स्त्री चिंतन सामाजिक-साहित्यिक दृष्टि, प्रथम संस्करण 2020, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली

16) डॉ.शुक्ला उमा, भारतीय नारी अस्मिता की पहचान, लोग भारतीय प्रशासन प्रथम संस्करण 1994

17) चतुर्वेदी जगदीश श्री वादी साहित्य विमर्श अनामिका पब्लिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूशन (प्रा) लिमिटेड नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2000

18) गुप्ता रमणिका, आदिवासी लोक, लोक संस्कृति, अंश प्रकाशन, संस्करण 2007, गांधीनगर दिल्ली

19) टेटे वंदना, आदिवासी दर्शन और साहित्य प्रकाशन नोटेशन प्रेस 2021

20) टेटे वंदना, आदिवासी साहित्य परंपरा और प्रयोजन प्रकाशन नोशन प्रेस 2021

21) पंकज कुमार अश्विनी, प्राथमिक आदिवासी विमर्श, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन रांची, प्रथम संस्करण 2017

22) केरकेट्टा रोज रोज श्री महागाथा की महेश एक पंक्ति नोशन प्रेस प्रथम संस्करण 2021

23) पंकज कुमार अश्विनी आदिवासी अर्थ जयपाल सिंह मुंडा की चुनिंदा लेख और वक्तव्य, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन रांची, द्वितीय संस्करण 2022

24) कुमार उमेश, आदिवासी महिलाओं का शैक्षणिक एवं सामाजिक आर्थिक अध्ययन क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2007

25) गुप्ता रमणिका, आदिवासी विकास से विस्थापन, राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2008

पत्रिकाएं

1) सम्पादक डॉ. एम. फिरोज अहमद, वाङ्मय त्रैमासिक पत्रिका, खण्ड- आदिवासी लेखकों की कहानियों, जुलाई सितम्बर 2015

2) डॉ. बड़ाईक सावित्री, आदिवासी साहित्य, आदिवासी दर्शन और समकालीन साहित्य सृजन त्रैमासिक अक 4-5, अक्टूबर 2015, मार्च 2016

3) पवार सुरेश, आदिवासी साहित्य, आदिवासी दर्शन और समकालीन साहित्य सृजन त्रैमासिक, समकालीन कहानियों में आदिवासी जीवन सघर्ष, अंक4-5, अक्टूबर 2015, मार्च 2016

4) बिष्ठ पंकज, समयांतर, झारखण्ड में नेतृत्व- वीर भारत तलवार, अंक- 9, वर्ष 48, जून 2017

5) पांडेय अनिल कुमार, मध्य एशिया और आर्य समस्या, बोधन पत्रिका अप्रैल 2004

6) थंडी जकारियास पी.1981, एबोरिजिनल ग्रुप इन इंडिया, कल्चर सर्वाइवल त्रैमासिक पत्रिका

7) सहाय संजय, जनचेतना का प्रगतिशील कथा मासिक, वर्ष 50, अंक-01, फरवरी 2016

8) यादव राजेंद्र, हंस जन चेतना का प्रगतिशील कथा मासिक वर्ष 23 अंक 3 अक्टूबर 2008

9) राय नारायण विभूति, वर्तमान साहित्य, वर्ष 27, अप्रैल 2011

वेबसाइट

https://www.drishtiias.com

https://www.socialresearchfoundation.com

https://hindicurrentaffairs.adda247.com

https://www.ijcrt.org https://www.allstudyjournal.com

https://shodhganga.inflibnet.ac.in/simple-search

Https://www.apnimati.com

परिशिष्ट

मेरे शोध प्रबंध से संबंधित मैंने 3 फरवरी 2024, चेशियर होम रोड, बरियातू, रांची झारखंड में 3:00 बजे से 6:00 बजे तक लिया गया साक्षात्कार।

रानी:- हमारे जीवन में ऐसा कोई एक व्यक्ति आवश्य होता है जिससे हम प्रभावित होते हैं तो आप किससे प्रभावित रहीं हैं? या फिर आपको लिखने की प्रेरणा किससे मिली?

वंदना टेटे:- उनके पिता ही उनकी प्रेरणा थे यानी कि प्यारा केरकेट्टा ही उनके प्रेरणा रहे हैं।

रानी:- आदिवासी शब्द से आपका क्या तात्पर्य है?

वंदना टेटे:- आदिवासी इस धरती के पहले वासी थे। उनकी अपनी पहचान होती है। अपनी संस्कृति होती है, अपनी भाषा होती है। एक विशिष्ट पहचान के वाहक होते हैं। उनकी अपनी जीवन शैली होती है। उनकी अपनी दर्शन होता है, जो इस दर्शन को मानता है जाने अनजाने ही सही, क्योंकि आदिवासियों का कोई लिखित चीज नहीं मिलता। वह परंपरागत रूप से जीवन दर्शन को मानते आ रहे हैं। जो उन्होंने पूर्वजों से सीखा और उस पर बिना प्रश्न उठाए अपने समाज को, घर परिवार के बीच उसको अपनाया और पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए आगे बढ़ाया है। तो जिनके पास वह दर्शन बचा हुआ है, जीवन जीने का तरीका, उनकी अपनी खास संस्कृति है तो जो उसको जी रहा है वह आदिवासी है।

रानी:- जब आपने लेखन कार्य शुरू किया तो आपने ऐसा कौन सा विषय पर प्रथम बार लिखा था और आपकी प्रथम रचना कौन सी है?

वंदना टेटे:- सबसे पहले उन्होंने आलेख लिखा था वह आलेख भी समाज में महिलाओं से संबंधित था। जब लिखना शुरू कर रही थी तब उनके जो सहयोगी रहे, उन लोगों के जो विचार थे, उनके जो दृष्टिकोण थे, जीवन को देखने का, समाज

को देखने का, उससे उनकी जो समझ बनी थी। इससे पता चलता है उन्होंने महिलाओं के प्रति ही लिखा था।

रानी:- आप कहानियाँ, कविताएं, निबंध लिखती है, तो क्या सामाजिक स्तर पर आपके लेखन कार्य के कारण आपको आदिवासी समाज या गैर आदिवासी समाज द्वारा विरोध किया गया है?

वंदना टेटे:- लेखन कार्य में उनका विरोध नहीं हुआ। लेखन की सभी लोगों ने प्रशंसा की है चाहे वह आदिवासी हो या गैर आदिवासी। सभी ने स्वीकारा है। महिलाओं के जमीन अधिकार को लेकर जब उन्होंने सामाजिक तौर पर तथा राजनीतिक तौर पर आवाज उठाई। कुछ लोगों ने उनका विरोध किया था। लेकिन ऐसा नहीं है कि सब ने विरोध किया। कुछ लोगों ने विरोध किया। उन्होंने पूरी चीज समझी नहीं सिर्फ जमीन का मुद्दा सोचकर उन्होंने इसका विरोध किया। आज समाज में इस चीज पर बहस हो रही है। समाज में बहस करने वाली सिर्फ स्त्रियां नहीं है बल्कि पुरुष भी है। जो जानते हैं कि महिलाओं ने जमीन बचाई है। जमीन बचाने के संघर्ष में महिलाओं ने सबसे अग्रणी भूमिका निभाई है। लेकिन जब अधिकारों का मसला होता है तो उनका अधिकार नहीं मिलता है। जबकि महिलाओं का अपना पक्ष था। पुरुष जो है वह बाहरी समाज से ज्यादा संपर्क रखता है और वह उनके संपर्क में आने की वजह से कई चीजों को नहीं समझ सकते। जमीन जैसी संपत्ति जो सामुदायिक संपत्ति रही वह खतरे में आ गई। वहीं जब महिलाएं जमीन से ज्यादा जुड़ती हैं। पुरुषों के बाहर जाने के बावजूद या काम पर चले जाने के बाद महिलाएं जमीन से जुड़कर ज्यादा काम करती है। इसीलिए बदलते परिवेश में थोड़ा सा समाज को इस विषय पर सोचना चाहिए कि महिलाओं को भी इसमें अधिकार देना चाहिए। वह व्यक्तिगत अधिकार की बात नहीं करती। वह बराबरी का अधिकार की बात कर रही है। अगर जमीन के पट्टे पर पुरुष का नाम होता है तो महिलाओं का भी नाम होना चाहिए। आज के समाज में हम देख रहे हैं कि यदि कुछ भी योजनाओं का लाभ होना है तो आपके पास संपत्ति हो, उसमें आपका नाम होना चाहिए। महिलाएं यदि स्थिति को सुधारने के लिए

कुछ बैंक से लोन या कहीं और से लेना चाहती है, तो कहीं पर भी उनका नाम नहीं होने के कारण उनको लाभ नहीं मिलता। जब मुआवजा का समय आता है और आदिवासियों में विस्थापन ज्यादा है। संपत्तियों को सरकारें ले रही हैं। कंपनियां ले रही है। वैसे में जब स्त्री का नाम नहीं आता पट्टे पर तो उसके हिस्से में कुछ भी नहीं आता है। यदि कोई विधवा या अविवाहित महिला है उसका नाम नहीं है जमीन के पट्टे में और पैसे मुआवजे के रूप में दिए गए। तो जिसका नाम था पट्टे पर उसको मिला। उसने बटवारा नहीं किया। जबकि जमीन सबकी सामूहिक होती है। उसमें एक महिला का भी हिस्सा होना चाहिए। लेकिन उसको नहीं मिलता है। इस नजरिए से भी की एकल महिला या विधवा महिला है तो उसे भी जमीन के हिस्से में से कुछ भी नहीं मिलता अपने बच्चों का भरण पोषण कैसे करेगी। आदिवासी समाज पैसे वाला नहीं है। जहां पैसा आता है वहां व्यक्तिवादी सोच भी लेकर आता है। ऐसे में एकल महिला हो चाहे अविवाहित हो या विवाहित है उसका क्या होगा। उसके बच्चों का क्या होगा। तो इसीलिए लोगों ने यह मांग रखी थी कि महिलाओं का भी नाम होना चाहिए। उन्हें भी बराबरी का हिस्सा मिलना चाहिए।

रानी:- आजादी से पूर्व और आजादी के पश्चात आदिवासी स्त्रियों पर शोषण होता आ रहा है। तो क्या आजादी के बाद आदिवासी स्त्रियों के संदर्भ में क्या क्या बदलाव दिखाई देता है। इस पर आपकी क्या राय है?

वंदना टेटे:- जब हम किसी भी विषय में शोध करते हैं तो हमें शोषण दिखता है। हमें संघर्ष नहीं दिखता। लोग आदिवासियों की लड़ाई, प्रतिकार नहीं देखते। उनको दिखता है वह कमजोर है इसलिए उन पर ज्यादा शोषण करते हैं। आदिवासियों पर शोषण होता आया है। उनकी लड़कियां भी उतनी ही हुई है। उसे भी देखना चाहिए। उसे भी लेखन में आना चाहिए। लड़ाई का तरीका हर एक संस्कृति का, हर एक समाज का अपना होता है। कोई बहुत मुखर होकर लड़ता है, तो कोई आहिस्ते से लड़ता है। आदिवासियों में यह चीज देखने को मिलता है कि वह एकदम मुखर होकर नहीं लड़ते हैं। दूसरे समाज के बीच महिलाओं के लड़ाइयां देखेंगे तो वैसे लड़कियां आदिवासी महिलाएं नहीं लड़ती। वह शांतिपूर्वक लड़ाई लड़ती हैं। इसलिए लोगों को लगता है कि वह ज्यादा सहनशील है। आदिवासी प्रकृति के

साथ रहते हैं। शोषण का जहां तक सवाल है, वह जरूर है क्योंकि एक नई व्यवस्था, एक नई संस्कृति के संपर्क में जब कोई आता है, वहां के बारे में कुछ नहीं जानते और सामने वाला भी आपके बारे में कुछ नहीं जानता है तो जाहिर सी बात है कि सामने वाला जानबूझकर शोषण करता है। आदिवासियों को यह पता नहीं होता कि उनका शोषण हो रहा है। उदाहरण के लिए तौर पर आदिवासी समाज श्रमशील समाज है। वह किसी भी काम या श्रम को खराब नहीं समझता। इसलिए वह हर तरह का काम कर सकता है। लेकिन दूसरी समाज में देखेंगे वहां जाति व्यवस्था आ जाती है। आदिवासी समाज सारा चीज खुद से करता आ रहा है इसलिए वहां श्रम की मेहत्ता है। गैर आदिवासी समाज श्रम के महत्व को नहीं समझते क्योंकि उनके पास पैसा है। वह लोग श्रम को खरीदते हैं और आदिवासियों में श्रम कभी भी खरीदना या बेचना नहीं रहा है। वह विनिमय वाला रहा है। एक दूसरे के मदद वाला रहा है। जहां लाभ आता है, पैसे के साथ ही मुनाफा आता है। तो वह शोषण का एक औजार होता है। जब महिलाएं दूसरी संस्कृति, दूसरे समाज, दूसरी व्यवस्था के नजदीक गए तो उनका शोषण हुआ और अभी भी हो रहा है क्योंकि आदिवासी अपने मोल भाव नहीं करते हैं।

रानी:- वर्तमान में आदिवासी लेखकों और गैर आदिवासी लेखकों द्वारा आदिवासियों पर लिखा जा रहा है। तो इस पर आपका क्या मानना है, क्या गैर आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है?

वंदना टेटे:- आदिवासी साहित्य कोई भी लिख सकता है। आदिवासियों का अपना कोई लिखित दर्शन नहीं था। परंपरागत रूप से उनका एक अपना संस्कृत, सामाजिक, आर्थिक, दृष्टिकोण होता है। आदिवासी समाज का जो मूल्य है या दर्शन है यह तय करता है कि इसको सदियों से मानते आ रहे हैं। वैसा ही गैर आदिवासियों का भी होता है। जो समाज श्रम की महत्ता नहीं समझता है। औरतों को अपने पैर की जूति समझता है। बराबर का दर्जा नहीं देता, सम्मान नहीं करता। जिनके यहां गलियां महिलाओं को लेकर ही हैं। वह समाज के लोग आदिवासियों को नहीं अपना सकते हैं। आदिवासी दर्शन को नहीं अपना सकता। यह जाहिर सी

बात है वह अपने नजरिए से नजरिए से चीजों को दिखेगा। इसका उदाहरण इस प्रकार है, गैर आदिवासी समाज में लड़कियों को लेकर एक धारणा है 'हंसी तो फांसी'। आदिवासी समाज में लड़कियां किसी से मुंह फुला कर बात नहीं करेंगे, कोई भी अनजान व्यक्ति कुछ पूछेगा तो मुस्कुराकर सहज होकर जवाब देती है लेकिन उनकी यह सहजता गैर आदिवासी समाज के लिए आमंत्रण हो जाता है। उनको लगता है कि यह तो हंसी तो फांसी। जिस समाज में लंगड़ा लुल्हा, जो एक अंग से अपंग हो या जिसमें एक खराबी हो उसको लेकर तरह-तरह के शब्द गढ़ लिए हैं लेकिन आदिवासी समाज में ऐसा नहीं दिखाई देता। भले ही वे लंगड़ा, आंध्रा जैसे शब्द बोल दे लेकिन उसके पीछे जो भाव है, सहानुभूति भाव उसको कमतर नहीं मानता। वह इंगित करते हैं लेकिन वह भाव नहीं होता। आदिवासी समाज में वह सबसे बड़ी कमी हो जाती है। रंग को लेकर भी वहां पर कोई भेदभाव नहीं दिखाई देता है। पुरुष हो या स्त्री हो उसको कमतर नहीं माना जाता। यहां रंग में भेदभाव नहीं किया जाता है। क्योंकि रंग को व्यक्ति ने तय नहीं किया, माता-पिता जिन्होंने जन्म दिया उन्होंने तय नहीं किया बल्कि प्रकृति ने तय किया है। वह प्रकृति का सम्मान करते हैं चाहे वह अपंग हो सभी का सम्मान करते हैं। इसलिए उन्हें सहज जीवन जीने में दिक्कत नहीं होती। लेकिन दूसरे समाज में रंग सावला हो तो उस लड़की का विवाह मुश्किल हो जाती है। इस तरह का समाज के परिवेश वाला नजरिया वह व्यक्त करते हैं। गैर आदिवासी समाज आदिवासी समाज को हर तरीके से कमतर समझता है। उनको उपभोग की वस्तु की तरह देखा जाता है चाहे वह पुरुष हो या स्त्री हो। पुरुष है तो उसका श्रम का और स्त्री है तो उसके शरीर का। जिनके पास यह नजरिया आदिवासी समाज के लिए होगा वह कितना भी बचता हुआ लिखेगा तो कहीं ना कहीं वह चुक करता है। आदिवासी जीवन दर्शन या विश्व दर्शन है उसको मतदे नजर रखते हुए लिखा है तब आदिवासी साहित्य कहने में कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन अगर उन्होंने उस चीज को नहीं माना तो वह आदिवासी साहित्य के अंतर्गत नहीं आ सकती। यदि आदिवासी भी अगर उस चीज को नहीं मानते हैं तो वह भी आदिवासी साहित्य के श्रेणी में नहीं आ सकता है।

रानी:- समाज में जाति व्यवस्था दिखाई देता है, और प्रत्येक व्यक्ति किसी ना किसी जाति से संबंध रखता है तो आपके द्वारा रचित कहानी 'घाना लोहार का' इस कहानी में रोपनी नामक पात्र है जो कि निम्न जाति के होने के कारण उसे अपने अधिकारों से वंचित रखा जाता है। तो आपको क्या लगता है यह जातिगत भेदभाव वह आदिवासी समाज में कैसे आयी और क्या ऐसी घटनाएं आज भी प्रासंगिक है?

वंदना टेटे:- रोपनी आदिवासी है और जिसके साथ उसने संबंध बनाए वह सवर्ण जाति का है। आदिवासी समाज में जाति व्यवस्था नहीं है। आदिवासी जाति ही नहीं है बल्कि आदिवासी समुदाय है। लोग फर्क नहीं कर पाते जाति और समुदाय में, क्योंकि अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति यह शब्द आदिवासियों के लिए संविधान में गढ़ दिया गया है। इसलिए लोगों ने भी आदिवासियों को जाति से संबोधित करना शुरू किया। लेकिन लोगों को यह चीज सुधारनी चाहिए कि आदिवासी समुदाय है जाति नहीं। आदिवासियों में जाति व्यवस्था नहीं है जाति व्यवस्था गैर आदिवासी समाज में है। ऐसी घटनाएं आज भी प्रासंगिक है। गैर आदिवासी समाज में आदिवासियों के श्रम को लेकर या किसी भी कारण से दूसरे समाज के व्यक्ति आदिवासी महिला से संबंध बनाते हैं और उनसे शादी नहीं करते बल्कि उन्हें दूसरी पत्नी के रूप में रखते हैं। निश्चित रूप से यह आदिवासीयों की सामाजिक व्यवस्था के लिए हानिकारक है। महिलाओं के सम्मान के हिसाब से भी यह सही नहीं है। आदिवासियों के इलाके में व्यापारियों के तौर पर ही गैर आदिवासी समाज पहले आया। नई चीजों के प्रति आकर्षण होता ही है, वह आकर्षण के वजह से महिलाओं का गैर आदिवासी समाज के साथ मिलना जुलना होता है। तो कहीं से भी

यह जाति व्यवस्था का खामियाजा तो सभों को भुगतना पड़ रहा है। जो सम्मान अपने समाज में रहकर मिलता है वह दूसरे गैर आदिवासी समाज में रहकर के नहीं मिलता।

रानी:- क्या आदिवासी समाज में स्त्रियों की शिक्षा को लेकर सक्रियता दिखाई देती है?
वंदना टेटे:- हाँ, आदिवासी समाज में स्त्री शिक्षा को लेकर सक्रियता दिखाई देती है।

रानी:- आदिवासी समाज में औद्योगीकरण का दौर कब से शुरू होता है?
वंदना टेटे:- झारखंड राज्य में सबसे पहले 'हेवी इंजीनियरिंग कॉरपोरेशन' बना था। तब से यहां पर औद्योगीकरण का दौर शुरू होता है।

रानी:- पगहा जोरी जोरी रे घाटो' इस कहानी में लैंगिक भेदभाव की समस्या दिखाई देती है। तो आपको क्या लगता है ऐसे कौन से कारण हो सकते हैं जिसके कारण हमें यह भेदभाव की स्थिति दिखाई देती है?
वंदना टेटे:- यह गैर आदिवासी समाज के साथ जब संपर्क में आते हैं तो उनकी कई सारी चीजें धीरे-धीरे आ जाती है। यह जो संक्रमण है जब गैर आदिवासी समाज आदिवासी क्षेत्रों में आने लगे और दोनों ही एक दूसरे के संस्कृति को देखने लगे तो जो गैर आदिवासी समाज अपने को श्रेष्ठ हमेशा जाहिर करता रहा है। अनजाने में आदिवासी लोग उसे श्रेष्ठ मान लिया। उसको अपनाया और धीरे-धीरे व्यवहार में आने लगा। वर्तमान की स्थिति यह है कि जो शहरों में खास करके या कस्बाइ इलाकों में यह चीज आ गई है। उससे भी ज्यादा यह है कि जिस तरह के पाठ्यक्रम स्कूलों में चलाए जाते हैं आदिवासी इलाकों में वैसे ही किताबें हैं। किताबें बनाने वाले भी उसी तरह लैंगिक भेदभाव वाले समाज से आते हैं। उनकी ही किताबें प्रकाशित होती है। उन्हें के किताबों को लेकर के स्कूलों में पढ़ाया जाता है। जिस तरह से भाषा बंद हुई, वैसे ही सोच भी, आपकी संस्कृति भी, सामाजिक व्यवस्थाएं भी बंद हो गई। जो नई व्यवस्था आई इसी तरह की लैंगिक भेदभाव वाली आई। तो आदिवासियों ने अपने बच्चों को वही स्कूल में डाल दिया और जो मूल्य परिवार से आए थे वहसब भूल गए और वहां से निकाल के जो बच्चे आए उनमें यह भाव आया।

रानी:- पलायन तथा विस्थापन यह दो बड़ी समस्या है जिसका आदिवासियों को सामना करना पड़ता है। सरकार द्वारा अनेक परियोजनाएं निकाले जाते है, औद्योगिक क्षेत्रों को बढ़ाने हेतु कई जंगलों को काटा जाता है बिना सोचे कि इसका भविष्य में क्या परिणाम होगा। तो इस पर आपका क्या विचार है।

वंदना टेटे:- विकास जिनको सरकारें बोलते हैं। वह विकास आदिवासियों की विकास की अवधारणाएं उससे बिल्कुल अलग है। जिस अर्थव्यवस्था को यह विकास आवाज देता है वह अर्थव्यवस्था आदिवासियों की नहीं है। आदिवासी अपने आप को इस सृष्टि को देखभाल करने वाला मानता है। वह कहते हैं कि सृष्टि ने प्रकृति में जितना आदिवासियों को दिया है उतना ही वे अपने जरूरत के मुताबिक उसका उपभोग करते हैं। उसके बाद उसकी अगली पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखते हैं। जब वह आए तो वह उपयोग कर सकें और बाकी छोड़ दे। जो समुदाय ऐसी सोच रखता हो वह जंगल काटने का नहीं सोचता। उनकी अपनी परंपराएं भी जो कि वह सदियों से इस धरती पर, जंगलों में ही रहते आए हैं वह अपने घर को कैसे उजाड़ेंगे? उजाड़ने का काम बहुराष्ट्रीय कंपनियों और सरकारें करती हैं। वर्तमान में आदिवासी इलाकों के जंगलों की स्थिति सुरक्षित है। गैर आदिवासियों ने जंगलों सहित जमीन में जो खनिज पदार्थ हैं उनको भी अपने इलाकों में खत्म कर दिया। वह सारी चीज आदिवासियों के यहां ही बची है। यह समझना चाहिए कि आदिवासियों ने प्रकृति को बहुत कम नुकसान पहुंचा है। वह कोशिश करते हैं कि उनकी एक परंपरा है गांव में जब वह घर बनाते हैं या उनको लकड़ी की किसी तरह की जरूरत होती है तो वह एक पुष्ठ लकड़ी को परिपक्वा हो चुकी और एक खास महीने में ही लकड़ी काटी जाती है। हमेशा नहीं काटते। पेड़ काटने से पहले भी आदिवासी उस पेड़ से माफी मांगते हैं। धन्यवाद भी दे देते हैं। तब जाकर वह उसको काटते हैं। काटना भी वे जड़ से नहीं उखड़ते। वह ऊपर से काटते हैं, क्योंकि जड़ से उखाड़ने से एक पेड़ को बनने में बहुत समय लगता है और एक बीज अगर लगाएंगे तो उसके पेड़ बनने में बहुत समय लगता है। पर्यावरण जिसको आज के भाषा विद्, समाज शास्त्रीय उनका जो पर्यावरण शब्द है, उस पर्यावरण को

आदिवासियों ने सदियों पहले पहचान है और उनको बचा के रखा है। लेकिन जंगल उजाड़ने की, जंगल की जीव जंतुओं को खत्म करने का दोष वह आदिवासियों पर लगाता रहा है। आदिवासी तो जंगल में अपना सारा सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, व्यवस्था उसका जंगल से ही चलता है। सरकार द्वारा जो भी योजनाएं बनती है, आदिवासियों के लिए वह खोखली होती है। आदिवासी स्वनिर्भर देश थे। मुख्यधारा समाज ने उनको मजबूर कर दिया कि वह आज मांगने वाली स्थिति में आ गए कल आदिवासी उनको देते थे, आज आदिवासियों की चीजों को लेकर के उन्हीं को दे रहे हैं। यह जितनी भी योजनाएं बनाई जाती है बिल्कुल झूठी है। दूसरा यह पलायन और विस्थापन का जो दर्द है, आदिवासी सदैव झेलते आ रहे हैं। जिसको तथाकथित मुख्यधारा कहते हैं कि देशहित में देना, राष्ट्रीय की भलाई के लिए देना, तो आदिवासियों से ज्यादा किसी ने नहीं दिया है।

रानी:- क्या आदिवासी साहित्य आदिवासियों के जीवन को बेहतर बनाने में सफल हो पाया है। इस पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है?
वंदना टेटे:- साहित्य जीवन का दर्पण है। दर्पण कुछ अलग नहीं बोलता है। साहित्य आपको रास्ता बता सकता है लेकिन आपको मजबूर नहीं करता या आपको कहता नहीं कि आप ऐसा जियो।

रानी:- आपके कहानियों में स्त्री पात्र अधिक दिखाई देते हैं तो क्या आदिवासी महिलाओं के सशक्तिकरण को लेकर और क्या सुधार लाना चाहिए?
वंदना टेटे:- आदिवासियों को पांचवी छठी अनुसूची में जो अधिकार दिए हैं, वह अधिकार वह दे दिए जाएं तो आदिवासियों और उसी में आदिवासी स्त्रियों का भी लाभ है। आदिवासी स्त्रियां अगर लड़ती हैं, आदिवासी स्त्रियां यदि कहती हैं तो वह अपने लिए नहीं कहती। व्यक्तिवादी होकर नहीं सोचती है। वह पूरे समाज के लिए लड़ती है। अगर वह जंगल, जमीन को बचाने के लिए लड़ रही है, आंदोलन कर रही हैं तो वह सिर्फ अपने घर को बचाने के लिए नहीं लड़ रही है। वह पूरे समुदाय के हिस्से के लिए लड़ रही है। आदिवासी महिलाएं असक्त नहीं है असक्त

मुख्यधारा समाज बना रहे हैं। यह जो सरकारें हैं उनकी जो योजनाएं हैं वह बना रहे हैं। आदिवासी महिलाओं के सशक्तिकरण का जो बिंदु है वह सिर्फ स्त्रियों के नजर से देख रहे हैं। आदिवासी समाज पैसे, अर्थ को नहीं देखता। उसकी मजबूती कहीं और होता है। इसलिए यह सोचना ही की आदिवासी महिलाएं कमजोर है उनको सशक्त करना चाहिए यह सोचना ही गलत है।

रानी:- भौगोलिक स्तर पर देखते हैं कि आदिवासी समाज में भिन्नता नजर आता है जैसे की हर राज्य में अलग भाषा, अलग संस्कृति है। क्या आदिवासी समाज के अंतर्गत भी भेदभाव दिखाई देता है। क्या यह एक कारण हो सकता है आदिवासियों के पिछड़ेपन होने का ?

वंदना टेटे:- नहीं, यह भेदभाव तो सबसे बाद का है। सबका अपना अपना बसावट था। लोग उसी में खुश थे। यह जो व्यवस्था है आई है समय के हिसाब से उसमें शिक्षा दे दिया है। कह दिया की अच्छी शिक्षा होगी तो अच्छी नौकरी मिलेगी। पहली, दूसरी पीढ़ी तक ये काम किया। जो पढ़ा उसको नौकरी दिया। जिस व्यवस्था में सारे लोगों के लिए नौकरियां है ही नहीं लेकिन शुरू में ही डाल दिया कि जो पढेगा वह नवाब होगा। लोग नवाब होने के चक्कर में अपना खेती का जो काम था उसको छोड़, अपना परंपरागत कार्य था उसको छोड़ मुख्यधारा समाज की तरफ आए और यहां पर उनको कुछ नहीं मिला। यहां उनकी जो परंपरागत कार्य था वह भी नष्ट हो गया और वहां भी कुछ नहीं मिला। आदिवासियों में यह भेदभाव नहीं था वह एक दूसरे के काम का सम्मान करते थे। वह खुद ही सारा काम करते थे। एक दूसरे को सहायता करने वाला व्यवस्था था। यह गैर आदिवासियों के बीच में रहा है कि ऊंची-नीच जाति का सवाल।

रानी:- आदिवासी समाज में वर्तमान में देखते हैं कि उनकी आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण वे पलायन करते हैं। तो क्या उन्हें पलयान करनी चाहिए? इस पर आपके क्या विचार है?

वंदना टेटे:- मुख्यधारा समाज द्वारा आदिवासियों का जो परंपरागत कार्य था उसको खत्म कर दिया गया। जो वह काम करते थे उस चीज को खराब बताकर अपनी चीजों को अच्छा बाता के सामने रखा गया। तो जाहिर सी बात है कि आदिवासी उनकी और झुके क्योंकि वे लगातार यह बोल रहे हैं। आदिवासियों का जो व्यवस्था है वह इस व्यवस्था से बिल्कुल अलग है और इस व्यवस्था को उसके ऊपर थोपे जाने के कारण यह सारी समस्याएं आई है।

रानी:- जिद' कहानी में कोलेंग नामक पात्र है जो निम्न जाति के होने के कारण तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात उसे अपने काम के जगह पर सही वेतन नहीं मिलता तथा उसे अपने काम के प्रति झूठा आरोप लगाया जाता है। महिलाएं अपने भविष्य को सुधारने के लिए कितना भी संघर्ष क्यों न कर ले , क्या मुख्यधारा का समाज आदिवासियों को कभी ऊपर उठने देगा? इस पर आपके क्या विचार है?

वंदना टेटे:- आदिवासी समाज में चाहे स्त्री हो या पुरुष लगातार संघर्ष करते हैं। इस कहानी में जो कोलेंग है, उस पर दबाव डाला जाता है। लेकिन फिर भी वह जिद पर अड़ी है कि उसको आगे बढ़ाना है। यही जिद आदिवासियों के लिए सबसे जरूरी होता है। यह जुनून जो होता है वह आदिवासियों के लिए जरूरी है क्योंकि यह जो व्यवस्था है उसकी व्यवस्था में उन्हें जबरन लाया जा रहा है। जहां पर अपने ही समाज में भेदभाव हो, वहां पर बराबरी उनसे बर्दाश्त नहीं होती है। सरकार संविधान की दुहाई दे दे के आदिवासियों को अपनी ओर धकेल रहे हैं। उन्हें नौकरी में ला रहे हैं। नौकरी में जब अधिकार की बात आती है तो वह देने के लिए तैयार नहीं है। मुख्यधारा समाज के पास सौ बहने हैं लेकिन वह जिद ही कोलेंग के लिए बेहतर है चाहे वह आदिवासी समाज की किसी भी स्त्री या पुरुष हो। यह व्यवस्था आदिवासियों के लिए नहीं है। इस व्यवस्था में जो बैठे हुए हैं वह सब एक जैसे हैं। वह आदिवासियों को बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं इसलिए इस प्रकार की भेदभाव हमेशा रहेगा। कुछ अच्छे मिलेंगे हो सकता है लेकिन ज्यादातर लोग आदिवासियों के प्रति भेदभाव की दृष्टि ही रखते हैं और उन्हें अपने अधीन रखना चाहते हैं।

रानी:- 'बड़ा आदमी' इस कहानी के अंत में एक वाक्य है जहां पर हीरा नामक पात्र कहती है- " मैं उनके पास जाती थी क्या? वे मेरे पास आते थे, मेरा पति जेठू तो आदमी ही नहीं था। इन भंडुवों के लिए मैं क्यों जान दूं?' क्या यह वाक्य स्त्री सशक्तिकरण के रूप में देखा जा सकता है? इस पर आपका क्या विचार है? क्यूंकि आमतौर पर हम देखते हैं कि महिलाओं के साथ बलात्कार जैसी घटनाओं के बाद वे बदनामी के डर से तथा समाज के डर से अपने आप में सिमटकर रह जाती है और इसके पश्चात वे खुलकर जी नहीं पाती है किंतु हीरा के माध्यम से स्त्रियों में चेतना लाने का सशक्त प्रयास किया गया है? इस पर आपकी क्या राय है।

वंदना टेटे:- यह सशक्त प्रयास नहीं है बल्कि सहज प्रयास है। आदिवासी महिलाएं इतना कमजोर नहीं होती है। आदिवासी समाज उनको कमजोर नहीं बनता। मुख्यधारा समाज खुद कमजोर होता है। वह जानता है कि बलात्कार जैसी घिनौनी हरकतें जो हैं उसके लिए महिला दोषी नहीं है। दोषी वह है जिसने किया है। जबकि मुख्यधारा समाज में देखते हैं इसमें औरतों को उपभोग की वस्तु ही माना है। औरत की मर्जी हो या नहीं वह उसकी बलात्कार करते हैं। बलात्कार का दोषी भी उसी को मानते हैं। तो इससे ज्ञात होता है कि आदिवासी समाज कितना समझदार है, कितना कितना जिवट समाज है। मुख्यधारा समाज कैसा समाज है जो औरतों से खेलते हैं। उनसे जबरदस्ती करता है। बिना उसकी मर्जी से सिर उठाकर कहता है कि वह मुख्यधारा समाज है। आदिवासी समाज में महिलाओं का लिंगानुपात देखेंगे तो महिलाओं का अनुपात बढ़ा हुआ है। आदिवासी समाज उससे आगे है। ठीक है उसके पास पैसा नहीं है। उसके पास बहुत बड़े-बड़े घर, गाड़ी, बंगले नहीं है। लेकिन वह सामाजिक रूप से, बौद्धिक रूप से कई मायनों में बहुत आगे हैं।

रानी:- क्या आदिवासी समाज में पितृसत्तात्मक समाज का चित्रण मिलता है?

वंदना टेटे:- हां, अब गैर आदिवासियों के साथ आदिवासियों का मिलना जुलना हो रहा है। तो इससे चीजें प्रभावित हो रही है। आदिवासियों में भी काम का

विभाजन स्त्री पुरुष का नहीं था। जो विभाजन था शारीरिक बल के आधार पर था लेकिन जब दूसरे संस्कृति या दूसरे समाज के संपर्क में आ रहे हैं तो वहां पर पुरुषों को देवता माना जा रहा है। पुरुष ने अपने आप को भी देवता मान लिया है। वह वैसे ही व्यवहार कर रहा है। जाहिर सी बात है कि साथ रहते रहते कुछ चीजें तो आएंगे। आदिवासी समाज में लिंग भेदों को नहीं मानता था। अब धीरे-धीरे मान रहा है। वैसे ही पितृसत्तात्मक समाज की व्यवस्था जो है पुरुषों को बहुत प्रतिस्थापित करती है। उनको लाभ देती है। बहुत सुविधा देती है। यही शिक्षा डाली गई और किताबों में भी यही पढ़ाया जाता है। जैसे 'सीता झाड़ू लगा।' 'राम खेलने जा।' तो यह छोटा वाक्य है लेकिन यह बहुत गहरे तक सीखता है और वही सीख आगे चलकर भी जीवन में उतरता है। यही आदिवासी समाज में भी पितृसत्तात्मक मूल्य आनी चाहिए वह उन्होंने किया। फिर भी कुछ हद तक आदिवासियों के यहां कुछ चीजें बची हुई है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था या मूल्य या गुण वह आदिवासियों में छोड़ दिया जाए तो वह चीजें नहीं है।

रानी:- हमारे देश में आदिवासी महिला नेताओं की संख्या पुरुष अधिकारों\नेताओं के मुकाबले कम है तो आपको क्या लगता है क्या आदिवासी स्त्रियां इस क्षेत्र में सक्षम नहीं हैं या उन्हें इस क्षेत्र में कोई प्रावधान नहीं मिलता?

वंदना टेटे:- आदिवासी स्त्रियों की संख्या को छोड़ दें तो मुख्यधारा के तथाकथित कहे जाने वाले महिलाएं हैं जो सवर्ण महिलाएं वह कितने हैं। देश में 33 प्रतिशत आरक्षण को लाने में अभी 2029 तक का समय है। जो समाज अपनी महिलाओं को नहीं कर सकता वह आदिवासी महिलाओं को क्या देगा। आदिवासी महिलाएं जानती हैं कि वह जो व्यवस्था है उस व्यवस्था में कितना घोलमेल है। वह अपनी महिलाओं को छोड़ते नहीं तो आदिवासियों को तो सबसे निचला वाले मानते हैं। जो आगे आएंगे अपने बलबूते पर उन पर भी यह ठप्पा लगा देंगे और तो और वह चाहते ही नहीं है कि महिलाएं आगे आए अपनी महिलाओं को वह आगे नहीं ला सकते। तो आदिवासियों को कैसे ला सकते हैं। आदिवासी महिलाएं तो 1952 से इस संसदीय प्रणाली में दम कम दिखाई है और लगातार समाज के प्रति जागरूक रहे हैं और उन्होंने आवाज भी उठाई है अपने समाज के प्रति। चूंकि वह जानती है

कि समाज के प्रति जिम्मेदार रहना है तो वह कहती रही है। आदिवासियों की जनसंख्या 10% है तो उसी हिसाब से व्यवस्था में भी दिखेंगे।

रानी:- औद्योगीकरण के आने से जल, जंगल, जमीन कितने प्रभावित हो रहे हैं? इस पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है?

वंदना टेटे:- आदिवासी समाज अपने ही घरों में फसल उपजा कर खा पी रहे थे। किसी चीज की जरूरत हुई तो उनके पास सब्जियां, किसी के पास चावल था। उसे ही एक दूसरे के प्रति बदलकर जो चीज उन्हें चाहिए वह ले लेते थे। यहां पैसा कहीं नहीं था। आदिवासी समाज ऐसा ही चलता था। आदिवासियों के पास सैकड़ो बीघा जमीन है, जानवर है, पेड़ पौधे हैं, फल फूल हैं, सारी चीज हैं, लेकिन पैसे नहीं है। कुछ भी दवा लेनी है तो आदिवासियों के पास जड़ी बूटियों को भी खत्म कर दिया। इसके कारण उनको अब पैसे चाहिए। फिर मुख्यधारा समाज कहना शुरू कर दिया कि यह गरीब है क्योंकि इनके पास पैसे नहीं है। आर्थिक स्थिति को मापने का यही तरीका है। घर में दो-तीन बोली अनाज पड़े हो लेकिन तब भी आदिवासी गरीब है क्योंकि उनके पास पैसे नहीं है। इसी नकद पैसे के लिए आदिवासी पलायन करते हैं। दूसरी बात है यह सारी योजनाएं और खनन कार्यों को लेकर जो किसी तरह से कारखाना खोलना चाहते हैं आदिवासियों के जमीन को लेकर आदिवासियों की जो सामाजिक व्यवस्था है वह ग्राम सभा के जो संविधान में कहता है कि ग्राम सभा के बिना अनुमति के आदिवासियों के इलाकों पर जहां पांचवी- छठी अनुसूची लागू होती है। वहां पर बाहरी कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता। उनसे बिना पूछे न तो रोड बनेगा, न कुआं खुदेगा, लेकिन सरकारें एक नकली बोर्ड घटित किया और उनके ठप्पे ले लिया। उस जमीन में रसायन डालकर उपजाऊ जमीन को नष्ट कर दिया।

रानी:- कई आदिवासी स्त्रियां जो गैर आदिवासी से विवाह करती है उन्हें उनका हक नहीं मिल पाता है जैसे की आप हमेशा से महिलाओं के लिए लड़ते आयी है तो अब तक आपको इसमें कितनी सफलता मिली है?

वंदना टेटे:- तथाकथित मुख्यधारा वह पुरुषवादी व्यवस्था है। जब किसी आदिवासी का विवाह गैर आदिवासी समाज में होता है तो वहां से हक और अधिकार मिलना चाहिए। वहां की महिलाओं को जो अधिकार मिलते हैं या वह जो तय है वह मिलना चाहिए। पहले आदिवासी समाज में यह था कि अगर आदिवासी समाज की बेटी विधवा हो गई हो लेकिन फिर भी वह जब मुसीबत में होती है तो उसको छोड़ा नहीं जाता था। यह भी अपवाद की तरह है कि गैर आदिवासी समाज में चली गई है तो उनको बिल्कुल ही छोड़ दिया जाता है। जहां तक अधिकार की बात है तो जाहिर सी बात है कि जिस परिवार में वह गई है वहां अधिकार उसे मिलना चाहिए। उसके लिए कोई भी आवाज उठाने में उसकी मदद करेगा।

रानी:- आदिवासी समाज में स्त्रियां अपने अधिकारों के लिए संघर्ष तो करती हैं लेकिन समय आने पर वे बोल नहीं पाती है तो आपको क्या लगता है कि ऐसे कौन से कारण हो सकते हैं जिनके कारण वे नहीं बोल पाती हैं?

वंदना टेटे:- आदिवासी स्त्रियां लड़ती हैं लेकिन सिर्फ अपने लिए नहीं लड़ती हैं। वह पूरे समाज में अपनी भूमिका देखती है। उसे यह अधिकार मिलना चाहिए या महिलाओं को यह अधिकार मिलना चाहिए, जिस दिन आदिवासी महिलाओं की एकल मान के सोचा जाएगा उसी दिन जो आदिवासियों की सामुदायिकता, सामूहिक तना-बना है, वह छिन्न-भिन्न हो जाएगा। गैर आदिवासी समाज में बेटियों को तमाम हक दे दिए हैं। संपत्ति पर अधिकार दे दिए गए। उसमें आपसी पारिवारिक ताना बाना होता है वह छिन्न भिन्न हुआ या नहीं हुआ, जो एक परिवार को जोड़ने के लिए जिस तरह के संबंध होने चाहिए वह संबंध है या नहीं, एक भाई और बहन में जिस तरह के आत्मिय संबंध होने चाहिए, पति-पत्नी संपत्ति के बंटवारे के बाद क्या वह संबंध रह गया या नहीं, तो आप कैसा चाहते हैं। आदिवासी महिलाएं जानती हैं कि जिस दिन समाज महिलाओं को एकल मानकर के अधिकार देने लगेगी उसी दिन आदिवासियों का ताना बाना टूटेगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि महिलाएं जो अकाल है, जो मुसीबत में है, उनको समाज मदद ना करें। उनके बारे में ना सोचे। उदाहरण के लिए विस्थापन का।

विस्थापन में मुआवजे का जो समय आता है तो उसमें महिलाओं को अगर बराबरी का हिस्सा नहीं देंगे। भई घर में पांच पुरुष हैं और एक विधवा है, और एक अविवाहित महिला है, तो उसे पूरे जमीन का साथ हिस्सा करना पड़ेगा। मुआवजा मिलेगा उसका साथ हिस्सा करना पड़ेगा तब बराबरी का होगा। तो वह भी आज के बदलते समय में देखना पड़े रहा है। पहले होता था कि सब ने मिलकर खेती बारी किया और जब फसल लेने का हुआ तो सबका हिस्सा लग जाता था। लेकिन आज जमीन के बदले में मुआवजे की बात करेंगे तो जमीन तो सरकारों ने पैसे में लगा दिया और जो जमीन सदियों खिला रही थी उसको चंद पैसों में उसको खरीद लिया। जो थोड़े से पैसे मिले उस पैसे में सब का गुजारा मुश्किल होगा। तो आपस में कल्हा, लड़ाई झगड़ा होना ही है। इसीलिए यह बेहतर होगा कि उसने मुझे नहीं दिया, नहीं मिला, यह जो मनमुटाव है वह नहीं होगा जब महिलाओं को भी हिस्सा देंगे।